सूर-पदावली

सम्पादक
श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', बी० ए०

संवत् २०११
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

नवीन संस्करण : १०००

मूल्य ।।।)

मुद्रक—रामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बम्बई में सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पांच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस सुलभ साहित्य माला के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस माला के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो वृद्धि हो रही है, उसका श्रेय श्रीमान् बड़ौदा नरेश को है। उनका यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

साहित्य मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

कवि-परिचय

जन्म, बाल्यकाल आदि

महाकवि सूरदास, जिनके प्रति हिन्दी का कृष्ण-काव्य अपनी प्राय: सम्पूर्ण सरसता, मौलिकता और उच्चता के लिए ऋणी है, कहाँ और किस संवत् में उत्पन्न हुए थे, यह ठीक-ठीक बतलाने के साधन हमारे पास नहीं हैं। इस सम्बन्ध में हमें जो कुछ सहायता मिल सकती है, उसके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक विभाग में तो उन संक्षिप्त लेखों और विवरणों को स्थान मिल सकता है जो औरों ने उनके सम्बन्ध में लिखे हैं; दूसरे विभाग में उन संकेतों की चर्चा की जा सकती है जो स्वयं सूरदास ने अपनी रचनाओं में दिए हैं।

गोस्वामी वल्लभाचार्य सूरदास के गुरु थे। स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उनका जीवन संवत् १५३५ वि० और सं० १५७८ वि० के बीच में निर्धारित किया है। इसके आधार पर और इस तर्क का आश्रय लेकर कि सूरदास अपने गुरु से लगभग १० वर्ष अवश्य ही छोटे होंगे, अध्यापक वेनीप्रसाद ने उनका जन्म-काल सं० १५४५ वि० निश्चित किया है। मेरी समझ में यह आवश्यक नहीं कि गुरु शिष्य से उम्र में भी हर हालत में बड़ा ही हो। जगद्गुरु शंकराचार्य बहुत थोड़ी ही वय में स्वर्गवासी हुए थे, तो क्या उनके सभी शिष्य उनसे छोटे ही रहे होंगे। क्या कोई भी शिष्य वय में उनसे बड़ा न रहा होगा। बहुत सम्भव है कि सूरदास गोस्वामी वल्लभाचार्य से दो एक वर्ष बड़े ही रहे हों; इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि वे उनसे दो चार वर्ष छोटे ही रहे हों। जो हो, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सूरदास का जन्म सं० १५३६ वि० के आस-पास ही हुआ होगा।

गोस्वामी वल्लभाचार्य के पौत्र गोस्वामी गोकुलनाथ-कृत चौरासी वैष्णवों की वार्ता, नाभादास-कृत भक्तमाल, सरदार कवि कृत सूरदास के दृष्टिकूट आदि रचनाओं से सूरदास के जीवन-सम्वन्धी संक्षिप्त विवरण उपलब्ध हो सकते हैं। इनके आधार पर जो कुछ कहा जा सकता है वह यह है कि उनका जन्म देहली के पास सीही नामक ग्राम में हुआ था; वे निर्धन माता-पिता के पुत्र थे। बाल्याकाल ही से ब्रज ने उन्हें आकर्षित कर लिया था और एक लम्बी उम्र तक वे जीवित रहे।

(१) स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सूरदास के जीवन पर प्रकाश डालने वाली उनकी एक रचना प्रकाशित की थी। उसके अनुसार वे हिन्दी के प्रथम कवि चन्दबरदाई के वंशज ठहरते हैं। वह रचना नीचे दी जाती है:—

"प्रथम ही प्रथम जगत में प्रकट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचार ब्रह्मा राखु नाम अनूप।।
पानपय देवी दियो शिव आदि सुर सुख पाय।
कहा दुर्गापुत्र तेरो भयो अति सुखदाय।।
पार पायन सुरन के पितु सहित अस्तुति कीन्ह।
तासु वंश प्रशंस में भौ चन्द्र चारु नवीन।।
भूप पृथ्वीराज दीनों तिन्हें ज्वाला देश।
तनय ताके चार कीन्हों प्रथम आप नरेश।।
दूसरे गुणचन्द तासुत शीलचन्द सरूप।
वीरचन्द प्रताप पूरण भयो अद्भुत रूप।।
रन्तभार हमीर भूपत संघ खेलत आप।
तासु वंश अनूप भौ हरचन्द अति विख्यात।।
आगरे रहि गोपचल में रहो तासुत वीर।
पुत्र जनमे सात ताके महाभट गम्भीर।।
कृष्णचन्द उदारचन्द जो रूपचन्द सुभाइ।
बुधचन्द प्रकाश चौथी चन्द भै सुखदाय।।

देवचन्द प्रबोध संसृत चन्द 'ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मन्द निकाम।"

ये पंक्तियाँ अध्यापक वेनीप्रसाद ने अपने 'संक्षिप्त सूरसागर' में उद्धृत की हैं, किन्तु उन्होंने इन्हें इस कारण प्रामाणिक नहीं माना है कि इनके बादवाले अंश में (देखिये पृष्ठ ४) मराठा-विजय की चर्चा आई है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से असंगत है।

(२) "गुरुप्रसाद होत यह दरसन सरसांठे वरस प्रवीन।
शिव विधान तक करउ बहुत दिन तऊ पारु नहि लीन।।"

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट ही है कि 'सूर-सारावली' की रचना के समय सूरदास की अवस्था सरसठ वर्ष की थी। अनुमान है कि इस पुस्तक का रचना काल सं० १६०२ रहा होगा।

(३) ये पंक्तियाँ लिखने के अतिरिक्त अपने एक ग्रन्थ 'साहित्य लहरी' में सूरदास ने इस प्रकार लिखा है।

"मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सम्वत पेख।।
नन्दनन्दन मास छै ते हीन तृतीया वार।
नन्दनन्दन जन्म ते हैं वाण सुख आगार।।
तृतीय ऋद सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन।
नन्दनन्दन दास हित साहित्य-लहरी कीन।।"

उक्त पंक्तियों के अनुसार 'साहित्य-लहरी' की रचना का समय अक्षय तृतीय वैशाख सं० १६८७ ठहरता है। इस प्रकार यदि सं० १५३५ के आस-पास हम सूरदास का जन्म समय निश्चित करते हैं तो 'साहित्य-लहरी' के निर्माण के समय उनकी अवस्था ७२ वर्ष के लगभग रही होगी। अनुमान है कि उनका निधन ८० वर्ष की अवस्था में हुआ होगा।

किंवदन्तियाँ

सूरदास के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें से

एक किवदन्ती उनकी एक प्रेम-घटना को हमारे सम्मुख लाती है और उसी के साथ उनके अंधे होने की कहानी जोड़ी जाती है। कहा जाता है कि एक स्त्री के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर वे वहुत दूर तक उसका अनुगमन करते चले गए। वाद को उन्हें यह सोचकर वेदना हुई कि जिन नेत्रों में नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का रूप समाया उनमें नारी के लावण्य ने चंचलता क्यों उत्पन्न कर दी? आराध्यदेव के प्रति अनन्य भक्ति के आवेश में उन्होंने अपने ही हाथों आँख फोड़ कर अपनी आन्तरिक आँखों की शक्ति वढ़ाली।

दूसरी किदवन्ती यह है कि एक वार सूरदास एक कुएँ में गिर पड़े। इसका वर्णन निम्नलिखत पंक्तियों में देखिए:—

"परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातएँ दिन आइ जदुपति किया आप उधार।
दियो चख दै प्रभु कही शिशु सुनु माँगुवर जो चाइ।
हौं कहौं प्रभु भगति चाहत शत्रु नाश सुभाइ।।
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधाश्याम।
सुनत करुणा सिन्धु भाष्यो एवमस्तु सुधाम।।
प्रवल दच्छिन विप्र कुल ते शत्रु ह्वै है नास।
अपित वुद्धि विचारि विद्यमान माने मास।।
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुश्याम।
भये अन्तर्धान वीते पाछली निशि याम।।"

सौन्दर्य-रसिकता

कवि सौन्दर्य का दर्शन करने वाला होता है और सौन्दर्य वही है जो सत्य में स्थित होता है। चिरन्तन-सत्य और युग-सत्य दोनों ही में सौन्दर्य का अनुभव करके कवि उन्मत्त हो जाता है, और जव उसका उन्माद हृदय में नहीं समाता तव वही संगीतमयी वाणी के रूप में व्यक्त होकर काव्य की संज्ञा पाता है। कवि का सौन्दर्य-दर्शन प्रकृत और हृदयग्राही होने के साथ ही साथ जितना ही सूक्ष्म होता है उतनी ही उत्कृष्टता कवि को प्रदान

करता है। अतएव सूरदास के काव्य का महत्व हृदयंगम करने के लिए हमें यह पता लगाना होगा कि वे किस कोटि का सौन्दर्य-दर्शन कर सके हैं।

यदि हम सभी प्रकार के सौन्दर्य की परीक्षा के लिए एक सर्वमान्य कसौटी का पता लगा सकें तो हमारा कार्य सरल हो जायगा। हमारी समझ में किसी को यह मानने में आपत्ति नहीं हो सकती कि वही सौन्दर्य उत्कृष्टतम है जो अधिक काल तक हमारी अधिक से अधिक परितृप्ति कर सके। बालक के हँसने में जो सरसता है, फूलों और लताओं आदि में जो रूप-माधुरी है, कन्या की आँखों में सरलता की जो छटा है, वह किसी भी समय काल-कवलित हो सकती है। परन्तु चन्द्रमा की मुस्कराहट का यह हाल नहीं है; यदाकदा बादलों और राहु से आक्रान्त होने के अवसरों को छोड़कर साधारणतया वह जब कभी आकाश में प्रकट होगा तभी अपने मंद-हास से सौन्दर्य-रसिक को उन्मत्त कर देगा। अनादि काल से वह ऐसा करता आया है और अनन्त काल तक उसे ऐसा करते रहने की आशा है। उषा, सन्ध्या, बादल, पर्वत, समुद्र, रजनी आदि का सौन्दर्य-भण्डार अनन्त काल तक रिक्त नहीं हो सकेगा।

परन्तु यदि हम मनुष्य के शारीरिक सौन्दर्य से ध्यान हटाकर उसके उस सौन्दर्य पर दृष्टिपात करें, जिसका सम्बन्ध उसके मन की विविध सरसतापूर्ण अवस्थाओं से है, तब क्यों कोई अन्तर नहीं उपस्थित होगा! इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य को मानसिक सौन्दर्य का कल्पना द्वारा रसास्वादन अधिक काल तक किया जा सकता है, उसकी मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ उषा की तरह रंगीन, संध्या की तरह सुन्दर, बादल की तरह सरस और समुद्र की तरह विविध आनन्द-रत्नों की खान हैं।

किन्तु क्या ऐसा भी कोई सौन्दर्य है जो उषा, संध्या, बादल, पर्वत, समुद्र तथा मनुष्य के मानसिक सौन्दर्य की गति से भी परे है, जिसका कभी क्षय नहीं होता, जिसमें क्षण भर के लिए भी परिवर्तन का भय नहीं है? हाँ, यह वह सौन्दर्य है जिसने अपने हृदय रक्त से उषा की सृष्टि की है, अपने विषाद से अंधकार में और मन्दहास से ज्योत्स्ना तथा दामिनी में प्राण-

संचार किया है, जिसने प्रभात-काल के दूर्वादल को अपने गले का मौक्तिक हार प्रदान किया है, जिसने उपाहर-रूप में समुद्र को अपना सिस्तार और पर्वत को अपना गौरव दिया है। इसी सौन्दर्य के दर्शन से जीवन की अपूर्णता नष्ट होती है और मानव व्यक्तित्व इसी के चरणों पर अपने आपको निछावर करके कृतकृत्य हो जाता है, सौन्दर्य रसिकता की सारी प्यास यहीं बुझ जाता है। इस सौन्दर्य का दर्शन करने वाले की प्रतीक्षा और उत्कंठा की शमन एक बार ही हो जाता है; इस सौन्दर्य में तल्लीन हो जाने के बाद फिर तो जीवन की परम तपस्या की सिद्धि हो जाती है।

महाकवि सूरदास ने साधारण मानव-सौन्दर्य में तृप्ति-लाभ नहीं किया था; वे उसी महा-सौन्दर्य के रसिक थे जिसकी ओर ऊपर संकेत किया गया है। इस महा सौन्दर्य का दर्शन उन्होंने श्रीकृष्ण के व्यवितत्व में किया था। श्रीकृष्ण की चरितावली उस विचित्र सौन्दर्य-राशि से सम्पन्न है जिसके एक अंश को, एक भाग को लेकर बड़े से बड़ा रसिक भी आनन्द से धन्य हो सकता है। वे नन्द-यशोदा के पुत्र, गोपियों के प्राणवल्लभ, कंस, जरासंध आदि राक्षसों के संहारक, और महाभारत के रण-क्षेत्र में ज्ञान के व्याख्याता के रूप में हमारे सामने आते हैं। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का चरित्र उस चतुर्दिग्गामी सौन्दर्य-प्रकाश से परिपूर्ण है जो विभिन्न युगों के अज्ञानान्धकार को विभिन्न किरणों के द्वारा दूर कर सकता है। उन्हीं के लोकोत्तर चरित्र का आधार लेकर सूरदास ने लोकोत्तर और अविनाशी सौन्दर्य का गान किया है।

सामाजिक परिस्थिति और उसका प्रभाव

समसामयिक समाज का प्रचलित आदर्श, जिसके वातावरण में कवि का जीवन व्यतीत होता है, कोई साधारण महत्त्व की वस्तु नहीं है। प्रायः उसके द्वारा कवियों के व्यक्तित्व का विकास प्रवाहित होता है। जो सत्कवि नहीं हैं, उनकी प्रतिभा तो उसे हृदयंगम करने में भी समर्थ नहीं होती, किन्तु जो सत्कवि हैं, वे भी अधिकांश में उसी का गान करके तथा पारितोषिक

के रूप में एक युग का गौरव प्राप्त करके समाप्त हो जाते हैं। अतएव इनके काव्य पर सामयिक समाज के आराध्य सत्य—आदर्श—का जो प्रभाव पड़ता है उसके सम्बन्ध में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं। रहे वे महाकवि, जो चिरन्तन और चिरस्थायी सत्य का गान करते हैं; उनके सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि समसामयिक समाज उन्हें भी अपने प्रभाव से अछूता नहीं छोड़ता, और यद्यपि वे उसे आत्मसात् करते हुए आगे बढ़ते हैं, तथापि यह प्रायः देखने में आता है कि चिरन्तन सत्य को ग्रहण करने की उनकी शैली पर वह क्रियाशील होता है, उस पर एक विशेष छाप छोड़ देता है। सूरदास केवल एक युग के कवि नहीं थे। वे मानव-हृदय के अमर कवि हैं, और संसार में जब तक सहृदयता और भावुकता का आदर रहेगा तब तक उनकी कविता का रसास्वादन होता रहेगा। सामाजिक परिस्थितियों ने उनकी काव्य-धारा को एक विशेष दिशा प्रदान की है और उनके काव्य को ठीक-ठीक समझने के लिये इन परिस्थितियों का कुछ अध्ययन आवश्यक है।

सूरदास की काव्य रचना के अनेक शताब्दियों पूर्व मुसलमान भारत में आ चुके थे, और अब वे केवल परदेशी न थे, बल्कि यहीं की हवा, मिट्टी और पानी से पोषण प्राप्त करके हिन्दुओं के साथ-साथ रहने लगे थे। इसके सिवा अधिकांश मुसलमान तो हिन्दू समाज ही में से निकलकर आए थे। क्रमशः इन हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपने जीवन में एक दूसरे की सहयोगिता आवश्यक समझी और उसको सम्भव करने के लिये हिन्दुओं और मुलमानों के उन्नायक एक नवीन संस्कृति की खोज में लगे। यह नवीन संस्कृति प्रायः पक्षपातशून्य दिखायी पड़ने वाली उस समीक्षा के रूप में प्रकट हुई, जिसने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ही के दोषों का वर्णन किया। स्वामी रामानन्द के शिष्य कबीर इस मत के प्रवर्तक थे। यह तो स्पष्ट था कि हिन्दुओं और मुसलमानों को अगर कहीं निर्विरोध रूप से मिलने का क्षेत्र मिल सकता था, तो वह केवल ईश्वर-प्रेम था। कबीर और उनके अनुयायी ज्ञानमार्गी सन्तों ने एक ओर तो समाज की—उस समाज

की, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्मिलित थे—कल्पना और स्थापना की, दूसरी ओर माया और ब्रह्म का राग भी अलापा। उनके बाद मलिक मुहम्मद जायसी तथा अन्य प्रेममार्गी कवियों ने उनकी शैली की रूक्षता और स्थूलता का त्याग करके इस कार्य को जारी रखा। मुसलमान कवियों ने इन साधनों द्वारा ईश्वर-भक्ति का जो रूप ग्रहण किया था, वह सूफी मत द्वारा प्रभावित था, जिसके प्रथम आचार्य फारस के हल्लाज नामक एक सन्त थे। सूफियों की भक्ति का यह स्वरूप बहुत कुछ हिन्दुओं के वेदान्तवाद से मिलता जुलता है। किन्तु हिन्दुओं की भक्ति वेदान्तवाद ही तक परिमित नहीं है, वह निराकार निर्गुण के साथ-साथ साकार सगुण ब्रह्म की अवतारों की उपासना की शिक्षा भी विशेषकर साधारण जन-समाज के लिए देती है, यही मतभेद की बात थी। ऐसी अवस्था में सूफियों के इस प्रचार को हिन्दू आचार्यगण उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते थे। किन्तु सूफी मत का माधुर्य लोगों के हृदय में प्रवेश कर रहा था। इस कारण स्वामी मध्वाचार्य ने श्रीकृष्ण के मधुर रूप की उपासना पर जोर देकर सूफी मत का सामना करने का निश्चय किया। महात्मा वल्लभाचार्य ने भी वाद को चलकर इसमें योग दिया। ये परिस्थितियाँ उस समय सूरदास के सामने थीं जब उन्होंने काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया। महात्मा वल्लभाचार्य की शिष्यता स्वीकार करने का यह अर्थ ही था कि वे मुसलमानों के सूफीमत-सम्बन्धी प्रचार के विरोधी थे और अपने गुरु के जीवन-कार्य को अपनी शक्तियों द्वारा पूर्ण सहायता देने को तैयार थे।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास' नामक निबन्ध में इस सम्बन्ध में **यह** लिखा है:—

'जो सम्बन्ध गोपिकाओं का भगवान श्रीकृष्ण के साथ प्रेम के नाते स्थापित होता है, भगवान के साथ स्वामी मध्वाचार्य ने भक्त का वही सम्बन्ध वर्णित करके अपनी उपासना-पद्धति ग्रहण की। इसलिये उनका सिद्धान्त द्वैतवाद कहलाता है। उन्हीं के सिद्धान्तों का प्रचार विष्णु स्वामी और निम्बार्काचार्य ने किया, केवल इतना अन्तर अवश्य हुआ कि गोपियों का

स्थान उन्होंने श्रीमती राधिका को दिया। स्वामी वल्लभाचार्य ने इसी उपासना की नींव उत्तर भारत और गुजरात में बड़ी ही दृढ़ता के साथ डाला और थोड़े परिवर्तन के साथ इस मधुर भावना का प्रचार बड़ा ही सरसता से भारतवर्ष के अनेक भागों में किया। स्वामी वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण की उपासना ही को प्रधानता दी है; इसलिये उनका दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है। परन्तु जैसा मैंने ऊपर अंकित किया है, समय की गति देखकर उनको राधाकृष्ण को युगल मूर्त्ति की उपासना ही को प्रधानता देना पड़ी। उस समय यह उपासना-पद्धति बहुत अधिक प्रचलित और आदृत भी हुई, क्योंकि इस प्रणाली में सूफियों के उस प्रेम और प्रेमिका-भाव का उत्तमोत्तम प्रतिकार था जिसका प्रचार वे इस समय भारत के विभिन्न भागों में तत्परता के साथ कर रहे थे।"

काव्य विषय

कवि जिस विषय का निर्वाचन करता है वह अधिकतर अनुगत बातों द्वारा प्रभावित होता है:—

(१) बाल्यकालीन धारणाएँ और रुचियाँ

(२) किसी महापुरुष के प्रति आकर्षण।

(३) जीवन-काल में चलनेवाले प्रिय अथवा अप्रिय आन्दोलन।

सूरदास में जब हम तीनों बातों की खोज करते हैं तो उनका काव्य-विषय सहज ही स्पष्ट होने लगता है। पाठकों को यह बताया जा चुका है कि बाल्याकाल ही में वे मथुरा के निवासी हो गए थे और ब्रजभाषा से उन्हें गहरा स्नेह हो गया था। अतएव श्रीकृष्ण और उनकी लीलाभूमि का गौरव-गान करने की ओर स्वभावतः उनकी रुचि हो सकती है। उनके सामने स्वामी वल्लभाचार्य का आकर्षक व्यक्तित्व भी था; उनसे दीक्षा लेने और 'घिघियात काहे को है, कुछ भगवतलीला वर्णन करि' आदि शब्दों में श्रीकृष्ण की लीला-वर्णन का आदेश प्राप्त करने पर सूरदास अपने उस कवि कार्य की ओर प्रवृत्त हुए जिसने उन्हें अमरता प्रदान कर दी है। महात्मा

वल्लभाचार्य पुष्टि-मार्ग के प्रचारक थे, जिसमें श्रीकृष्ण के बाल-स्वरूप की उपासना का निर्देश है। लेकिन समय की आवश्यकताओं को देखकर उन्हें श्रीकृष्ण के गोपीवल्लभ-स्वरूप की आराधना के पक्ष में विशेष रूप से अपना प्रभाव डालना पड़ा था। सूरदास ने इन दोनों ही बातों को अपने काव्य का विषय बनाया है। इनके सिवा सूरदास के सामने सूफियों का वह प्रचार-कार्य भी था जिसका लक्ष्य साकार ब्रह्म की उपासना का प्रतिष्ठापन था।

सूफी मतानुमोदित उपासना में एक बहुत बड़ी त्रुटि थी। एक ओर तो उसका अनुयायी अपने उपास्यदेव के स्वरूप ज्ञान से रहित होकर भी, उसे हृदयंगम करने में असमर्थ होकर भी अपने निराकार प्रिय के वियोग में दग्ध होने का प्रदर्शन करता था और दूसरी ओर उपासक और उपास्य का भेद मिटाकर स्वयं को परमात्मा-रूप घोषित करने का साहस करता था। पहली क्रिया में अस्वाभाविकता थी और दूसरी में अतिशय अहंकार की भावना। दोनों ही में मानव-हृदय की उपेक्षा की गयी थी। स्वभावतः सूफी कवियों की अस्वाभाविकता और अहम्मन्यता सूरदास को खली और हृदय में बाण की तरह चुभने वाली सरस तथा भावकतापूर्ण उक्तियों का आश्रय लेकर उन्होंने उन्हें उत्तर देकर निरुत्तर करना चाहा।

रस-परिपाक

सूरदास के सम्बन्ध में एक मर्मज्ञ ने कहा है—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर को तीर।
किधौं सूर को पद लग्यो बेधत सकल सरीर॥

इनमें संदेह नहीं कि सूरदास के पदों में मानव हृदय पर प्रभाव डालने की बड़ी विचित्र शक्ति है। उनकी रचना को प्रकट हुए आज लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष हो रहे हैं; इस दीर्घकाल के भीतर हिन्दी-काव्य-पाठकों ने कविता के क्षेत्र में कितने ही परिवर्तन देखे, कितनी ही शैलियों का उत्थान-

पतन हो गया, और फिर भी सूरदास की लोकप्रियता में कोई अन्तर नहीं पड़ा। इसका कारण क्या है?

काव्य के क्षेत्र में भाषा, शैली, अलंकार आदि अन्ततोगत्वा साधन मात्र हैं; साध्य तो स्वयं काव्य ही है, जिसका रस के रूप में पहले कवि के हृदय में उद्रेक होता है। इसके बाद जब वह भाषा-शैली आदि के संग से प्रवाहित होता है, तब पाठकों के हृदय को आर्द्र करने के लिए पहुँचता है। सूरदास में यह काव्यतत्त्व लोकोत्तर है। अलौकिक के कारण ही उसमें बड़ी प्रखर शक्ति है, और इसी कारण जब वह अभिव्यक्ति के साधनों से सम्पन्न होकर हमारे हृदय में प्रवेश करता है, तब उसे आनन्द के एक झोंके से हिला देता है। सूरदास के इस काव्य-संयोग का अनुमान करने के लिए हमें उनकी रचनाओं का विश्लेषण करके देखना होगा।

रस परिपाक क्या है? जीवन में का सत्य की जो अनुभूति हमारे हृदय को लोकोत्तर आनन्द में मग्न कर देती है वही अपने सम्पूर्ण रूप में सम्पन्न होने पर परिपक्व रस की संज्ञा प्राप्त करती है? अनुभूति अथवा रस-परिपाक की उत्तेजना उपस्थित करनेवाली सामाग्री को उद्दीपन विभाव और उसके प्रभाव से शरीर में प्रकट होनेवाले चिन्हों को अनुभाव कहते हैं। इन वाह्य लक्षणों के प्रकट होने के साथ [ही साथ अनुभूति हृदय में संचरित होती और किसी स्थायी मानवी विकार के साथ संगठित होकर, जिसे स्थायी-भाव कहते हैं, अपनी पूर्णता को पहुँचती और मनुष्य को द्रवीभूत करती है।

सूरदास के पदों में उद्दीपनों, अनुभावों, संचारी और स्थायी भावों की तीव्रता विशेष उल्लेख योग्य है। विश्लेषण के उद्देश्य से मैं निम्न लिखित पद उपस्थित करता हूँ—

"मधुकर इतनी कहियहु जाइ।
अति कृशगात भई ए तुम बिन परत दुखारी याइ।
जलसमूह बरसति आँखिन तें हूँकति लीने नाउँ।
जहाँ-जहाँ गोदोहन कीनों सूंघति सोई ठाउँ।

परति पछार खाइ छिन ही छिन जति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारी है वारि मध्य ते मीन॥"
—सूर पदावली पृ० ३२।

इन पदों में आलम्बन-विभाव वे गाएँ हैं जो कृष्ण के मथुरा चले जाने से वहुत दुखी हैं। उनके सामने श्रीकृष्ण का नाम लिये जाने से और जहाँ जहाँ श्रीकृष्ण ने उनके थनों से दूध दुहा था वहाँ पहुँचने से उनक हृदय के भीतर दबी हुई आग उमड़ पड़ती है, उद्दीप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में ये उद्दीपन-विभाव हैं। उद्दीपनों का प्रभाव पड़ने पर लगभग साथ ही हृदय और शरीर में विकार उत्पन्न होते हैं। शरीर में प्रकट होने वाले विकारों को अनुभाव और मन में संचरित होनेवाले भाव को सञ्चारी-भाव कहते हैं। गायों की दोनों आंखों से जल का बरसना, उनका हूँकना, दुहने की जगहों को सूंघना, पछाड़ खाकर गिरना—ये सब अनुभव अर्थात् बाह्य चिन्ह हैं, जो शरीर में प्रकट होकर उद्दीपनों के प्रभाव की सूचना देते हैं। इसी प्रकार इन उद्दीपनों द्वारा ही स्मृति संचरित होती है और करुण रस के स्थायी भाव शोक का विकास होता है। पाठक आप ही देखेंगे कि उद्दीपनों और अनुभावों के तीव्र संवेग के कारण स्मृति के संचार और स्थायी भाव के विकास में कितनी मार्मिकता आ गयी है।

सूरदास के काव्य में जगह-जगह अभिव्यंजना का—जितना शब्दों के वाच्यार्थ द्वारा व्यक्त होता हो उससे अधिक संकेत का—अत्यंत सहृदयतापूर्ण और प्रभावशाली समावेश मिलता है। उदाहरण के लिये उक्त पदों ही में संकेत यह है कि जब पशुओं की यह दशा है तव उन मनुष्यों की क्या अवस्था होगी जो अधिक व्यक्तिगत सम्वन्धों के कारण-विशेष से मर्माहत हैं। गोपियों ने गाय का संदेश कहकर उनकी पीड़ा से कहीं अधिक अपनी ही पीड़ा का मर्मभेदी विज्ञापन कर दिया। सूरदास की भावमयी और अमृतवर्षिणी लेखनी की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

सूरदास नें अधिकांश में श्रृगार-रस लिखा है। इस श्रृंगार रस में संयोग और विप्रलम्भ दोनों ही का विस्तार है। संयोग श्रृंगार के वर्णन में यदा-कदा वह सीमा के वाहर चले गयें हैं, किन्तु ऐसा करते हुए भी उनका भाव ऊँचा रहा है। विप्रलम्भ, वात्सल्य आदि सम्बन्धी उनकी उक्तियाँ भी वड़ी हृदयहारी हैं। श्रीकृष्ण की वाल-लीला के वर्णन में तो उन्होंने कमाल किया है।

शैली

सूरदास के काव्य में दो शैलियाँ स्पष्ट रूप से मिलती हैं (१) सरल शैली, (२) कूट शैली।

सरल शैली में सूरदास की भाषा वहुत, साफ और साधारण से साधारण अपढ़ हिन्दी भाषी की शीघ्र समझ में आनेवाली है उदाहरण के लिये अनुगत पदों को देखिये—

"तेरी सौंह मेरी सुन मैया अवहीं व्याहन जैहों।
सूरदास सव सखा वराती नूतन मंगल गैहों॥"
—सूर-पदावली, पृ० ३

"सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाँइ पिराइ।
जौ न पत्याहि पूछ वलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ।"
—सूर-पदावली, पृ० ६

कूट शैली के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस संग्रह में ऐसे पदों का समावेश नहीं किया गया है। किन्तु ज्योतिष आदि विषयों के ज्ञान के कारण सरल-शैली में भी सूरदास साधारण पाठकों के लिये कभी-कभी सहज ही दुर्वोध हो उठते हैं उदाहरण के लिये—

"नूतन चन्द्ररेख मधि राजति, सुरगुरु शुक्र उदीत परसपर।
—सूर-पदावली पृ०२

"नील स्वेत पर पीत लाल मनि, लटकनि भाल लुनाई।
सनि-गुरु असुर देवगुरु मिलि मनु, भौम सहित समुदाई।"
—सूर-पदावली पृ० २

वृहस्पति, शुक्र आदि ग्रहों का रंग जिसे मालम है, वहीं इन उपमाओं का रसास्वादन कर सकता है। अस्तु, इन सब बातों के होते हुये भी यह निश्चित है कि अधिकांश में सूरदास की शैली सरल और प्रसादगुण-पूर्ण है।

सूर की पदावली में सरलता के साथ मधुरता और कोमलता है। उन्होंने कठोर और संयुक्त अक्षरों का प्रयोग बचाया है, अधिकतर अनुस्वारपूर्ण अथवा 'ल', 'स', आदि अक्षरों से काम लिया है। अनुप्रासों की भी अच्छी छटा दिखाई है। उदाहरण के लिये, अनुगत पंक्तियाँ देखिये—

"कछुक कुटिल कमनीय सघन अति, गोरज मंडित वेश।
अम्बुज रुचिर पराग पै मानौ, राजत मधुप सुदेश॥
कुंडल लोल कपोल किरणगण नैन कमल दल मीन।
अधर मधुर मुसुकानि मनोहर, करत मदन मद हीन॥"
—सूर-पदावली पृ० ८

शब्द-प्रयोगों के आधार पर हम सूर की सरल शैली के दो विभाग कर सकते हैं—

(१) तत्सम शब्द-विशिष्ट शैली।
(२) तद्भव शब्द-विशिष्ट शैली।

तत्सम शब्द-विशिष्ट शैली के उदाहरण देखियेः—

"मोर मुकुट सिर जलज माल उर, कटि तटि पीताम्वर छवि पावत।
नव जलधर पर इन्द्रचाप मनो, दामिनी छवि विलोकि घन धावत॥"
—सूर-पदावली पृ० ७

× × ×

कुंचित केस मयूर चन्द्रिका मंडल सुमन सुपाग।
मानहु मदन धनुष सर लीन्हें, वरसत है वन वाग॥
अधर विम्ब विहँसानि मनोहर, मोहन मुरली राग।
मानहु सुधा पयोधि घोर घन व्रज पर वरषन लाग॥"
—सूर-पदावली, पृ० ६

तद्भव शब्द-विशिष्ट शैली के कुछ उदाहरण देखिए :—

"प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरो कमल वदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहि माँझ॥
तेरी सौं मोहि घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यो न मानत, परे आपनी टेक॥"
—सूर-पदावली पृ० ६

शब्द-प्रयोग

सूरदास व्रजभाषा के प्रथम कवि माने जाते हैं। किन्तु उनकी व्रजभाषा साहित्यिक व्रजभाषा है और उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। उनका काव्य-काल हिन्दूसंस्कृति का पुनरुत्थान-काल भी था। धन-प्राप्ति की लालसा से प्रेरित होकर अथवा केवल मूर्तियों के संहार को लक्ष्य करके मुसलमानों ने हिन्दू मन्दिरों के विरूद्ध जो सफल आक्रमण किये थे, उससे असंगठित हिन्दुओं के पुनरुत्थान ने न केवल इस सन्देह का निराकरण कर दिया, किन्तु उस वेग के साथ जो केवल प्रतिक्रियाओं में दिखाई पड़ता है, हिन्दुओं में अपने धार्मिक साहित्य के प्रति उत्साह का संचार भी कर दिया, इसी का परिणाम यह था कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखनेवाले वैष्णव कवियों की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का समावेश प्रचुर मात्रा में होने लगा। अष्टछाप के कवियों की तो, जिनमें महात्मा सूरदास भी एक थे, संस्कृत-गर्भित कोमल कान्त पदावली ने बहुत प्रसिद्धि पायी।

ऊपर जो अवतरण उद्धृत किये गये हैं, उनमें पाठकों नें देखा होगा कि सूरदास ने जहाँ एक ओर तत्सम शब्दों के प्रति प्रवृति दिखायी है, वहाँ दूसरी ओर तद्भव शब्दों के प्रयोग द्वारा भी अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि की है। यही नहीं, विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी उन्होंने अपने काव्य में बड़ी सुन्दरता के साथ बताया है:—

"मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ।"

—सूरपदावली पृ० ९

"कुंडल मकर कपोलनि झलकत, श्रम सीकर दे दाग"

—सूर-पदावली, पृ०९

'लड़का' बहलाना' और 'दाग' को कवि ने 'लरिका', 'बहराइ' और 'दाग' के रूप में कितने अनूठेपन के साथ अपना लिया है।

सूरदास जी ने शब्दों को कहीं-कहीं खूब तोड़ा-मरोड़ा भी है। नीचे के उदाहरणों में रेखांकित शब्दो को देखिये —

(१) 'लोचन लोल कपोल ललित अति, नासिक की मुकता रद छद पर"

—सूर-पदावली पृ० २।

(२) "दूधदंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत, एक उपमाई।"

—सूर-पदावली, पृ०२।

(३) "नासा तिलक प्रसून पदनि पर चिबुक चारु चित खाग।"

—सूर-पदावली पृ०९।

(४) "अबला सार ग्यान कहा जानैं, कैसे ध्यान धराहीं।"

—सूर-पदावली, पृ० ६१

मुहावरों का प्रयोग

सूरदास के पदों में मधुरता, स्वाभाविकता और प्रभावशालिता का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि उन्होंने मुहावरों की मनोहर बंदिश की है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

"**फूटि न गई तिहारो चारौ**, कैसे मारग सूझै।"
"यह छतियाँ मेरे कुँवर कान्ह विनु, **फटि न गई द्वै टूक**।"
"इक **तनु जरो जात** बिनु देखे, अब तुम दीने फूंक।"
—सूर-पदावली, पृ० २०।

"ऊधौ सों समुझाइ प्रकट करि अपने **मन को बीतो**।"
—सूर-पदावली, पृ० २६।

"अपने जियत **नयन भरि देखौं**, हरि हलधर की जोरी।"
—सूर-पदावली, पृ० २५।

"सूर असीस जाइ देहौं जिनि, न्हातहु बार खसै।"
—सूर-पदावली, पृ० २४।

अलंकार

सूरदास के काव्य में अलंकारों की भी प्रचुर नियोजना है। थोड़े से उदाहरण नीचे उपस्थित करता हूँ:—

१—छेकानुप्रास

"**दुहँधा दोउ दँतुली** भई, अति मुख छवि पावत।
—सूर-पदावली, पृ० ६

"दाड़िम दसन मंद मुसकानि, मोहत सुर नर नाग।
श्री गोपाल रस रूप भरी है, सूर सनेह सुहाग।"
—सूर-पदावली, पृ० ६।

२—वृत्यानुप्रास

कहिए काहि आहि को ऐसो, कियो, जगत आधीन।"
—सूर-पदावली, पृ०१०।

"रही न सुधिहु **सरीर** धीर **मति**, पिवत किरन मकरंद।"
—सूर-पदावली, पृ०५।

"नटवर **रूप अनूप** छवीलो, सबहिन के मन भावै।'
—सूर-पदावली, पृ०८।

३—यमक

"कैसे **मुकुट कुटिल** कच जैसे, सुभग भाल भ्रुव नीके हैं।"

—सूर-पदावली, पृ० ९।

४—श्रुत्यानुप्रास

"**बलि जाऊँ मोहन मूरति की, बलि कुंडल बलि नैन विशाल।
बलि भृकुटी बलि तिलक बिराजै, बलि मुरली बलि शब्द रसाल।
बलि कुंडल बलि पाग लटपटो, बलि कपोल बलि उर बनमाल।**"

—सूर-पदावली, पृ० ८।

५—रूपक

"उत घन गरज इहाँ मुरली धुन जलधर उत इत अमृत भरी री।
उतहि इन्द्रधनु इत वनमाला; तअति विचित्र हरि कंठ धरी री।"

६—उत्प्रेक्षा

"द्वै-द्वै दमकि दँतुलियाँ बिहँसत, मनु सीपज धरु किय वारिज पर।"
"लघु-लघु लट सिर घूंघरवारी, लटकि लौनी लिलार पर।
नूतन चन्द्र रेखमधि राजति., सुरगुरु शुक्र उदीत परसपर।"

—सूर-पदावली, पृ० २।

× × ×

"घन तन स्याम सुदेश पीतपट, सीस मुकुट, उर माला।
जनु दामिनि घन रवि तारागन, प्रगट एक ही काला।"

—सूर-पदावली, पृ० १३।

× × ×

"मोर मकुट सिर जलज माल उर, कटि तट पीताम्बर छवि पावत!
नव जलधर पर इंद्रचाप मनो, दामिनि छवि बालक घन धावत।"

—सूर-पदावली, पृ० ७।

× × ×

"स्वच्छ सेज में ते मुख निकसत गयो तिमिर मिट मंद।
मानों मथि सुर सिंधु फेटि फेटि दरस दिखायो चंद।"
—सूर-पदावली, पृ० ५।

७—प्रतीप

"कोटि किरण में जो प्रकाशत, उडपति वदन लजावें!"

× × ×

"अधर मधुर मुसकान मनोहर, करत मदन मन हीन।"
—सूर-पदावली, पृ० ८।

८—स्वभावोक्ति

"जैहों लोटि अबइ धरती पर, तेरी गोद न ऐहों।
लाल कहैहों नन्द बाबा को, तेरो सुत न कहैहों।
—सूर-पदावली, पृ० ३।

× × ×

"मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी॥"
—सूर-पदावली, पृ० ५।

ध्वनि

काव्य में ध्वनि का महत्वपूर्ण स्थान है। जब कही हुई बात के वाच्यार्थ की अपेक्षा उसका लक्ष्यार्थ अथवा उसका व्यंगार्थ ही विशेष रूप से ग्रहण करने योग्य होता है तब वहाँ हम कहते हैं कि इस कथन से यह ध्वनि आती है। ध्वनि के समावेश से कविता का गौरव और हृदयतत्व को स्पर्श करने की शक्ति बढ़ जाती है। सूरदास के काव्य में प्रचुर मात्रा में ध्वनि नियोजना पाई जाती है। कुछ उदाहरण देखिए:——

"सूर श्याम बिछुरन की हम पै देन बधाई आये।"
—सूर-पदावली, पृ०२०।

"यह सुनि ग्वालिन सब मुसकानी, ऐसेउ गुन ही जानत।
सूर श्याम जो निदरयौ सबही मात पिता नहीं मानत।"

—सूर-पदावली, पृ० ७।

को **माता को पिता** हमारे।
कब **जनमत हमको तुम** देख्यो, हँसी लगत सुनिबैन तुम्हारे॥

—सूर-पदावली, पृ० ७।

छन्द रचना

सूरदास ने अपना सम्पूर्ण काव्य पदों में ही कहा है। छन्दरचना-शास्त्र की दृष्टि से इनमें निम्नलिखित दोष हैं—

(१) अनेक स्थलों में दीर्घ को ह्रस्व और ह्रस्व को दीर्घ करके पढ़ना पड़ता है।

(२) अनेक स्थलों में पदों की मात्राओं में कमी अथवा वृद्धि हो जाती है। इन दोनों दोषों के थोड़े से उदाहरण नीच दिये जाते हैं—

अब कहा करौं निछावरि सूरज सोचति अपने लालन ऊपर॥

—सूर-पदावली, पृ० २।

'चन्द्र खिलौना लैहौं मैया मेरी चन्द्र खिलौना लैहौं।"

—सूर-पदावली, पृ० ३।

"उत बगपाँति सोभित इत सुन्दर धाम बिलास सुदेव खरी री।

—सूर-पदावली, पृ० १२।

"सबै संयोग जुरो है सजनी, हठकर घोप उजार्यौ।
अब को सात दिवस राखैगो दूरि गयो ब्रज को रखवार्यो।"

—सूर-पदावली, पृ० २७।

"तेरी सौं सुनि जननि यशोदा हठि गोपाल पठायो।
कहा भयो जो कहत है देवकी माता जायो।"

—सूर-पदावली, पृ० ४४।

किन्तु इन दोषों पर दृष्टिपात करते समय हमें यह न भूलना चाहिये कि सूरदास गायक थे और संगीत में इनके कारण कोई अड़चन नहीं उपस्थित होती।

हिन्दी साहित्य में स्थान

सूरदास के समसामयिक अनेक कवि थे, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य को अनुपम और अमूल्य रत्न प्रदान किए हैं—गोस्वामी तुलसीदास, कवि-वर केशवदास आदि के नाम इस श्रेणी में लिये जा सकते हैं। सूरदास ने उक्त दोनों कवियों की तरह विविध छंदो के प्रयोग की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने जो कुछ कहा सव पदों में कहा। उनके अतिरिक्त सूर-सागर को उस रूप में प्रबन्ध-काव्य नहीं कह सकते जिस रूप में 'राम-चरितमानस' और 'रामचन्द्रिका' प्रवन्ध-काव्य हैं। वाललीला के वर्णन में, करुण-रस के कथन में, भक्ति के निवेदन में सूरदास और तुलसीदास की टक्कर होती है; किन्तु दोनों ही महाकवि अपना अपना व्यक्तित्व अपनी ही विशेषताओं से युक्त एक दूसरे से पृथक वनाये रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि एकान्त आनन्द की धारा प्रवाहित करने में, भाषा और भाव का सामंजस्य-विधान संगठित [करने में तथा लोकोक्तियों के नगीने जड़ने में सूरदास हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास को छोड़कर शेष समस्त कवियों में उँचा स्थान रखते हैं।

हिन्दी-काव्य के क्षेत्र में जव कबीर और सूर की तुलना की जायगी तव यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि कबीर की कल्पना के अनेक तत्त्व संगठित न हो पाए; अनुभूति के रस से सिंचित न होकर वे मरु-प्रदेश के ठूंठ से रह गए। उदाहरण के लिये कवीर की आलोचनाओं से सूरदास की आलोचनाओं की तुलना कीजिए। एक में उद्दण्डता और रूखापन है तो दूसरे में मार्मिकता और सरसता! पाठकों के अवलोकनार्थ दोनों ही की एक-एक रचना नीचे दी जाती है :—

कबीर

"ब्राह्मन गदहा जगत का; तीरथ लादा जाय।
जजमान कहें मैं पुन किया, यह मिहनत का खाय॥
ब्राह्मन तें गदहा भला, आन देव तें कुत्ता।
मुल्ला तें मुरगा भला, सहर जगावै कुत्ता॥
कलिका ब्राह्मन मसखरा, ताहि न दीजै दान॥
कुटुम्ब सहित नरकै चला, साथ लिया जजमान॥

सूर

अब अति चकितवंत मन मेरो।
आयो हौं निर्गुण उपदेसन, भयो सगुन को चेरो॥
मैं कछु ज्ञान कह्यो गीता को, तुमहिं न परयो निबेरो।
अति अज्ञान जानि कै अपनो, दूत भयो सब केरो॥
निज जनि जानि इहाँ हरि पठयो, दीनों बोझ घनेरो।
सूर मधुप उठि चले मधुपुरी, बोर योग के बेरो॥

कबीरदास ने ब्राह्मणों पर जो आक्षेप किये हैं उनकी तुलना सूरदास द्वारा किये गये निर्गुणवाद के उक्त खंडन से कीजिए। दोनों में कितना अंतर है? सूर की आलोचना में कितनी सहृदयता है, कितनी मार्मिकता है।

सूरदास ने निर्गुणवाद की जो आलोचना की है वह उनके समसामयिक समाज में प्रचलित युगसत्य आदर्श—का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार यदि केवल युगसत्य को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने ही की कसौटी पर कसें तो वे अन्य कवियों की अपेक्षा खरे उतरते हैं और इस क्षेत्र में भी उनका सामना केवल तुलसीदास कर सकते हैं। कबीरदास तो, जहाँ तक युगसत्य की कलात्मक अभिव्यक्ति का सम्बन्ध है, युगसत्य के व्याख्याता हैं, प्रचारक हैं, कवि नहीं हैं।

फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि काव्य केवल युगसत्य के निरूपण

और गान से सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह सार्वभौम और सार्वकालीन सत्य का गान जितनी ही अधिक मात्रा में करता है उतनी ही अधिक उसकी उत्कृष्टता समझी जानी चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस क्षेत्र में सूरदास की सफलता स्वयंसिद्ध है। सच बात यह है कि सूरदास के काव्य-सागर में युगसत्य पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह प्रतिविम्बित अवश्य है, किन्तु जैसे सागर का अस्तित्व चन्द्रमा से सर्वथा स्वतन्त्र है वैसे ही उनका काव्य भी युगसत्य को सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ-साथ स्वतन्त्र भी है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि सूरदास ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा, तथापि वह हिन्दी के महान और गोस्वामी तुलसीदास जी को छोड़कर सबसे महान् कवि हैं। रही यह कि सूरदास और तुलसीदास में कौन अधिक श्रेष्ठ है, तो इस निर्णय का प्रयत्न न करके हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि दोनों की तुलना न करना ही अच्छा है; दोनों अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं।

इस संग्रह को हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के योग्य बनाने में मैंने कई बातों को अपने दृष्टिगत रक्खा है। पहली बात तो यह है कि मैंने इसमें ऐसे पद नहीं आने दिये हैं जिनमें सुकुमार मस्तिष्क वाले छात्रों पर अप्रिय प्रभाव पड़ने की आशंका हो। मैंने सम्पूर्ण संग्रह को सात भागों में विभक्त किया है—(१) बाल लीला; (२) कृष्ण-प्रभाव और नन्द-यशोदा आदि की पीड़ा; (३) विरहिणी गोपिका; (४) उद्धव-सन्देश; (५) सुदामा दैन्य-निवारण; (६) प्रभास-मिलन; (७) भक्त का आवेदन। यह सभी विभाग ऐसे हैं जिनमें नवयुवकों और नव-युवतियों के उच्च बनाने में सहायक तथा कोमल, मार्मिक और रमणीय भावों से अलंकृत लोकोत्तर आनन्द प्रदायक पदों का संग्रह किया गया है। इस आयोजन से आशा है, पाठक लाभान्वित होंगे।

बाल-लीला

माई आजु तौ बधाई बाजै मन्दिर महर के।
फूले फिरैं गोपी-ग्वाल ठहर-ठहर के॥
फूली धेनु फूले धाम फूली गोपी अंग-अंग,
फूले फरे तरुवर आनंद लहर के।
फूले वन्दी-जन द्वारे फूले जु वन्दवारे,
फूले जहाँ जोइ-सोइ गोकुल सहर के।
फूले फिर जादौकुल आनँद समूल मूल,
अंकुरित पुन्य फूले पिछले पहर के।
उमगे जमुन-जल प्रफुलित कुंज-पुंज,
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के।
नृत्यत मदन फूले भूली रति अंग-अंग,
मन के मनोज फूले हलधर वर के।
फूले द्विज संत बेद मिटि गयो कंस खेद,
गावत बधाई सूर भीतर बहर के॥१॥

कर पग गहि अँगूठा सुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरषि-हरषि अपने रंग खेलत॥
सिव सोचत विधि बुद्धि विचारत, वट बढ्यो सागर जल झेलत।
विडरि चले घन प्रलय जानिकै, दिगपति दिगदंतीनि सकेलत॥
मुनि गन भीत भये भव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रजवासिन वात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत॥२॥

लालन हौं वारी तेरे मुख पर।

आई मोरिही डीठि ना लागै तातें मसि बिन्दा दयो भ्रू पर!
सरवस में पहिले ही वार्‌यो नान्हीं-नान्हीं दँतुली द्वै पर!
अब का करौं निछावरि 'सूरज' सोचति अपने लालन ऊपर ॥३॥

लाल हौं वारी तेरे मुख पर।

कुटिल अलक मोहनि मन विहसति, भृकुटि विकट पंकज नैननि पर ॥
द्वै-द्वै दमकि दंतुलियाँ-विहंसत मनु सीपज घरु किय वारिज पर।
लघु-लघु लट सिर घूंघरवारी लटकन लटकि रह्यो लिलार पर ॥
यह उपमा कहि कापै आवै, कछुक कहौं सकुचत हौं हिय पर।
नूतन चन्द्ररेख मधि राजत, सुर गुरु-सुक्र उदोत परसपर ॥
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुकता रद छद पर।
सूर कहा न्यौछावर करिये, अपने लाल ललित लरखर पर ॥४॥

कहाँ लौं वरनौं सुन्दरताई।

खेलत कुँवर कनक आँगन में, नैन निरखि छवि छाई ॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति, बहुबिधि मुरंग वनाई।
मानो नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई ॥
अति सुदेस, मृद हरत चिकुर मन, मोहन, मुख वगराई।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल, अलि अवली घिरि आई ॥
नील श्वेत पर पीत लाल मनि, लटकन माल लुनाई।
सुनि गुरु असुर देव गुरुमिलि मनु भौम सहित समुदाई ॥
दूधदन्त दुति कहि न जाति अति, अद्भुत एक उपमाई।
किलकत हँसत दुरति प्रगटति मनु, घन में विज्जु छटाई ॥
खंडित वचन देत पूरन सुख, अल्प-अल्प जलपाई।
घुटुअन चलत रेनु तनु मंडित सूरदास वलि जाई ॥५॥

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोई-सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि सों आवै, तोकों कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूंदि लेत हैं, अधर कबहुँ फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै बैठी, करि-करि सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नंदभामिनि पावै ॥६॥

गहे अँगुरिया तात की, नंद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत है, कर टेकि उठावत ॥
बार बार बकि स्याम सों, कछु बोल बकावत।
दुहुँधाँ दोउ दंतुली भई, अति मुख छवि पावत ॥
कबहुँ कान्ह पर छाँड़ि, नंद पग द्वैक रिंगावत।
कबहुँ धरनि पर बैठि मनहिं, मन महँ कछु गावत ॥
कबहुँ उलटि चलि धाम कों, घुटुअन करि धावत।
सूर स्याम मुख देखि, महर मन हरष बढ़ावत ॥७॥

चंद्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चंद्र खिलौना लैहौं।
धौरी को पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं ॥
मोतिन माल न धरिहौं उर पर, झिगुला कंठ न लैहौं।
जैहौं लोटि अबइ धरनी पर, तेरी गोद न ऐहौं ॥
लाल कहैहौं नन्द बबा कौ, तेरो सुत न कहैहौं।
कान लाय कछु कहति जसोदा, दाउहिं नाहिं सुनैहौं ॥
चन्दा हूते अति सुन्दर तोहि, ग्वाल दुलहिया ब्यैहौं।
तेरी सौंह मेरी सुन मैया, अबहीं ब्याहन जैहौं।
सूरदास सब सखा बराती, नूतन मंगल गैहौं ॥८॥

लेहौं री मां, चंदा चहौंगो।
कहा करौं जलपुट भीतर कौ, बाहर ओकि रहौंगो ॥
वह तो झलमलात झकझोरत, कैसे कै जु लहौंगो।
वह तो निपट निकट ही देखत, वरज्यो हौं न रहौंगो ॥
तुम्हरो प्रेम प्रगट मैं जान्यो, बौराये न वहौंगो।
सूर स्याम कहै कर गहि ल्याऊँ, ससि तनु ताप दहौंगो ॥६॥

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुवन मोहि पठायो ॥
चार पहर बंशीवट भटक्यो, सांझ परे घर आयो।
मैं बालक बहियन को छोटौ छींको केहि विधि पायो ॥
ग्वालबाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो ॥
जिय तेरे कछु भेद उपजि है, जानि परायो जायो।
यह लै अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
सूरदास प्रभु बिहँसि जसोदा लै उर कण्ठ लगायो ॥१०॥

जागिये व्रजराज कुँवर, कमल कुसुम फूले।
कुसुम वृन्द सकुचत भये, भृङ्ग लता भूले ॥
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गौ खरिकनि मैं, बछरा हित धाई ॥
विधु मलीन रवि प्रकास, गावत नरनारी।
सूर स्याम प्रात उठो, अंबुज कर धारी ॥११॥

प्रात समय उठि सोवत हरि को, वदन उघार्यो नन्द।
हरि निसकत देखन कौ आतुर, नैन निसा के द्वंद ॥
स्वच्छ सेज में ते मुख निकसत, गयो तिमिर मिटि मन्द।
माने मथि सुर सिंधु फेन कटि, दरस दिखायो चंद ॥

धाए चतुर चकोर सूर सुनि, सब सखि सखा सुछंद ।
रही न सुधिहु शरीर धीर मति, पिवत किरन मकरन्द ॥ १२॥

मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी ।
किती बार मोहि दूध पियत भइ, यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति वल की वेनी ज्यों, ह्वै है लाँबी मोटी ।
काढ़त गुहत नहावत पोंछत, नागिन-सी भ्वैं लोटी ॥
काचो दूध पियावति पचि पचि, देती न माखन रोटी ।
सूर स्याम चिरजीवौ दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥ १३॥

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीन्हों, तोहि जसुमति कब जायो ॥
कहा कहौं यहि रिसके मारे, खेलन हौं नहिं जात ।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तुम्हरो तात ॥
गोरो नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम शरीर ।
चुटुकी दै-दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर ॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै ॥
सुनुहु कान्ह बलभद्र चवाई, जनमत ही कौ धूत ।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥ १४॥

दै मैया भँवरा चकडोरी ।
जाइ लेहु आरे पर राखो काल्हि मोल लै राखे कोरी ।
लै आये हँसि स्याम तुरत ही देखि, रहे रँग-रँग बहु डोरी ॥
मैया विना और को राखै, बार-बार हरि कहत निहोरी ।
बोलि लिये सब सखा संग के खेलत स्याम नन्द की पौरी ।
तैसेइ हरि तैसेइ सब बालक, कर भँवरा-चकरिनि की जोरी ।
देखत जननि जसोदा यह छवि, विहँस बार-बार मुख मोरी ।
सूरदास प्रभु हसि-हँसि खेलत, व्रज बनिता तृन डारति तोरी ॥ १५॥

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं ।
वृन्दाबन के भाँति भाँति फल अपने कर तें खैहौं ॥
ऐसी अवहि कहौ जनि वारे, देखौ अपनी भाँति ।
तनिक तनिक पग चलिहौ कैसे आवत ह्वै है राति ।
प्रात जात गैयाँ लै चारन, घर आवत हैं साँझ ॥
तेरी सौं मोहि घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक ।
सूरदास प्रभु कह्यो न मानत, परे आपनी टेक ॥१६॥

जसुमत दौरि येह्रिकनियाँ ।
आजु गयो मेरो गाय चरावन, हौं वलि गई निछनियाँ ।
मो कारन कछु आन्यों हैं, बलि, वनफल तोरि कन्हैया ।
तुमहि मिले मैं अति सुख पायों, मेरे कुँवर कन्हैया ॥
कछुक खाहु जो भावै, मोहन देतिहुँ माखन रोटी ॥
सूरदास प्रभू जीवहु जुग-जुग हरि हलधर की जोटी ॥१७॥

मैया, हौं न चरैहौं गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरो पांइ पिराइ ॥
जौ न पत्याहि पूछ वलदाउहि, अपनी सौंहे दिवाइ ।
यह सुनि सुनि जसुमति ग्वालन, कहं गारी देत रिसाइ ॥
मैं पठवति अपने लरिका कौ आवै मन वहराइ ।
सूर स्याम मेरो अति वालक, मारत ताहि रिगाइ ।

को माता को पिता हमारे ?
कब जनमत हमकों तुम देख्यो, हँसी लगत सुनि बैन तुम्हारे ॥
कब माखन चोरी करि खायो, कब वाँधे महतारी ।
दुहत कौन की गैया चारत, वात कही यह भारी ॥
तुम जानति मोहिं नन्द ढुटौना नन्द कहाँ तें आये ?
हम पूरन अवगति अविनासी माया सवनि भुलाये ॥

यह सुनि ग्वालिन सब मुसकानी, ऐसेउ गुन हौ जानत ?
सूर स्याम जो निदरौ सब ही, मात-पिता नहिं मानत ।।१६।।

मैं बलि जाऊँ स्याम मुख छबि पर ।
बलि बलि जाऊँ कुटिल कच बिथुरी, बलिबलि जाऊँभृकुटि लिलाट पर।
बलि बलि जाऊँ चारु अवलोकनि, बलिहारी कुण्डल की ।
बलि बलि जाऊँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छबि की ।।
बलि बलि जाऊँ अरुन अधरन की, विद्रम बिंब लजावन ।
मैं बलि जाऊँ दसन चमकन की, वारों तड़िन नसावन ।।
मैं बलि जाऊँ ललित ठोढ़ी पर, बलि मोतिन की माल ।
सूर निरखि तन मन बलिहारी बलि बलि जसुमति लाल ।।२०।।

ब्रज जुवती सब कहत परसपर, बन तें स्याम बने ब्रज आवत ।
ऐसी छवि में कहहुँ न पाई, सखी सखी सों प्रगट देखावत ।
मोर मुकुट सिर जल जमाल उर, कटि तट पीतांबर छबि पावत।
नव जलधर पर इन्द्रचाप मनो, दामिनि छवि बालकधन धावत।
जेहि जुअंग अवलोकन कीन्हों, सो तन मन तहैहीं बिरमावत ।
सूरदास प्रभु मुरली अधर धरे, आवत राग कल्याण बजावत ।।२१।।

मेरे नयन निरखि सचु पावैं।
बलि बलि जाऊँ मुखारबिंद की, बनते पुनि ब्रज आवैं ।
गुंजा फल अवतंस मुकुटमनि, बेनु रसाल बजावैं।
कोटि किरन मुख में जो प्रकासित, उड्डपति बदन लजावैं ।।
नटवर रूप अनूप छबीलो सबहिन के मन भावैं।
सूरदास प्रभु-चलन मंद गति बिरहिन आप नसावैं ।।२२।।

बलि बलि जाऊँ मोहन मूरति की, बलि कुंडल बलि नैन बिसाल।
बलि भृकुटी बलि तिलक बिराजत, बलि मुरलीबलि सब्द रसाल ।।

वलि कुंडल वलि पाग लटपटी, वलि कपाल वलि उर बनमाल।
वलि मुसकानि महा मुनि मोहत, वलि उपरै ना गिरधर लाल ॥
वलि भुज सखा अंस पर मेले, वलि कुलही वलि सुन्दर चाल।
वलि काछनी चोलना की वलि सूरदास वलि चरन गोपाल ॥२३॥

माधौ जू के वन की सोभा, कहत नाहिं बनि आवै।
अचवत आदर लोचन पुटु, दोउ मन नहिं तृपिता पावै ॥
सघन मेघ अति स्याम सुभग वपु तड़ित बसन बनमाल।
सिर सिखण्ड बनधातु विराजत, सुमन सुरंग प्रवाल ॥
कछुक कुटिल कमनीय सघन, अति गोरज मंडित केस।
अंबुज रुचि पराग पै मानो, राजत मधुप सुदेस ॥
कुंडल लोल कपोल किरन गन नैन कमल दल मीन।
अधर मधुर मुसकानि मनोहर, करत मदन मदहीन ॥
प्रति-प्रति अंग अनंग कोटि छबि सुन सखि परम प्रवीन।
सूर दृष्टि जहं जहाँ परति, तहं तहीं रहति ह्वै लीन ॥२४॥

इक दिन हरि हलधर सँग ग्वालन। प्रात चले गोधन वन चारन।
कोउ गावत कोउ बेनु बजावत। कोउ सिंगी कोउ नाद सुनावत ॥
खेलत हँसत गए वन महियाँ। चरन लगीं जित तित सब गइयाँ।
हरि ग्वालन मिलि खेलन लागे। सूर अमंगल मन के भागे ॥२५॥

कुंचित केस मयूर-चन्द्रिका, मंडल सुदन सुपाग।
मानहु मदन धनुष सर लीन्हें, बरषत है बन बाग।
अधर बिंब बिहँसान मनोहर, मोहन मुरली राग।
मानहु सुधा पयोधि घेरि, घन व्रज पर बरषन लाग ॥
कुंडल मकर कपोलनि झलकत, श्रमसीकर के दाग।
मानहु मीन मकर मिलि क्रीड़त, सोभित सरद तड़ाग ॥
नासा तिलक प्रसून पदनि पर, चिबुक चारु चित खाग।
दाड़िम दसन मन्द गति मुसकनि, मोहत सुर नग नाग ॥

श्रीगोपाल रस-रूप भरी है, सूर सनेह सोहाग ।
ऐसी सोभासिंधु बिलोकत, इन अँखियन के भाग ॥२६॥

सुनहु सखी मैं बूझति तुमकों, काहू हरि को देखे हैं ।
कैसो तन कैसो रंग देखियत, कैसी बिधि करि भेषे हैं ॥
कैसो मुकुट कुटिल कच कैसे, सुभग भाल भ्रुव नीके हैं ।
सेकै नैन नासिका कैसी, श्रवननि कुंडल पी-के हैं ।
कैसे अधर दसन दुति कैसी, चिबुक चाह चित्त चोरत हैं ।
कैसे निरखि हँसत काहू तन, कैसे बदन सिकोरत हैं ॥
कैसे उर माला है सोभित, कैसी भुजा बिराजत हैं ।
कैसे कर पहुँची हैं कैसी, कैसी अँगुरिया राजत हैं ॥
कैसी रोमावली स्याम के नाभि, चारु कटि सुनियत हैं ।
कैसे कनक मेखला कैसी, कछनी मन नहिं गुनियत हैं ॥
कैसे जंघ जानु कैसे दोउ, कैसे पद नहिं जानति हैं ।
सूर स्याम अंग-अंग की सोभा देखे की अनुमानित हैं ॥२७॥

ऐसी विधि नन्दलाल कहत सुन माई री ।
देखे जो नैन रोम-रोम प्रति सुभाई री ॥
विधि ने द्वै नैन रचे, अंग ठान ठान्यो ।
लोचनि नहिं वहुत दिये, जानिकै भुलान्यो ॥
चतुरता प्रवीनता, विधाता की जाने ॥
अब कैसे लगत हमहिं, बातें न अयाने ॥
त्रिभुवनपति तरुन कान्ह, नटवर वपु काछे ।
हमको द्वै नैन दये, तेऊ नाहिं आछे ॥
ऐसो विधि को विवेक, कहौ कहा वाकों ।
'सूर' कबहूँ पाऊँ जो कर अपने ता कों ॥२८॥

मुख पर चन्द्र डारी वारि ।
कुटिल कच पर भौंर वारौं, भौंह पर धनु वारि ॥
माल केसरी तिलक छवि पर, मदन सत-सत वारि।
मनु चली वहि सुधा धारा, निरखि मनधौं वारि ॥
नैन खंभन मीन वारौं, कमल के कुल वारि ।
मनों सुरसति जमुन गङ्गा, उपमा डारों वारि ॥
निरखि कुंडल तरनि वारौं, कूप श्रवननि वारि ॥
झलक ललित कपोल छवि पर, मुकुट-सत-सत वारि॥
नासिका पर कीर वारौं, अधर विद्रुम वारि ।
दसन दुति पै विज्जु वारौं, बीज दाडिम वारि ॥
चिबुक पर चित्त वित्त वारौं प्राण डारौं वारि ।
'सूर' हरि की अंग सोभा को सकै निरवारि ॥२६॥

बाँसुरी विधि हू तें प्रवीन ।
कहिये काहि आहि को ऐसो, कियो जगत आधीन ॥
चारिवदन उपदेश बिधाता, थापी थिर-चिर-नीति ।
आठ वदन गरजति गरबीली, क्यों चलिये यह रीति॥
बिपुल विभूति लई चतुरानन, एक कमल करि थान ।
हरि करि-कमल जुगल पर बैठी, बाढ़्यो इहि अभिमान ॥
एक बेर श्रीपति के सिखये, उन लियो सब गुन जान ।
इनके तो नंदलाल लाड़िलौं, लग्यो रहत नित कान ॥
एक मराल पीठ आरोहन, विधि भयो प्रवल प्रसंस ।
इन तों सकल विमान किए, गोपीजन मानस हंस ॥
श्रीबैकुंठनाथ-उर-वासिन, चाहत जापद रैन ।
ताको मुख सुखमा सिंहासन, करि बैठी यह ऐन ॥
अधर सुधा पी कुलव्रत टारयो, नहीं सिखा नहिं ताग ।
तदपि सूर या नन्दसुवन कों, याही सों अनुराग ॥३०॥

नटवर भेष धरे व्रज आवत ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल कुटिल अलक मुख पर छवि पावत ॥
भकुटी विकट नैन अति चंचल, यह छबि पर उपमा इक धावत ॥
धनुष देखि खंजन विधि डरपत, उड़ि न सकत उठिबे अकुलावत ॥
अधर अनूप मुरली सुर पूरत, गौरी राग अलाप वजावत ।
सुरभी वृन्द गोप बालक संग, गावत अति आनन्द बढ़ावत ॥
कनक मेखला कटि पीतांबर नृत्यत मंद-मंद सुर गावत।
सूर स्याम प्रति अंग माधुरी निरखत, व्रज-जन के मन भावत ॥३१॥

रास-रस-रीति नहिं वरनि आवै ।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं,
कहाँ इहि चित्त जिय भ्रम भुलावै ॥
को कहौं कौन माने निगम अगम जो,
कृपा बिन नहीं जा रसहि पावैं ।
भाव सों भजै विना भाव में जे नहीं,
भाव ही माँहि भाव यह समावै ॥
यहै निज मन्त्र यह ज्ञान यह ध्यान है,
दरस दंपति भजन-सार गाऊँ ।
इहै माँगौ बार-बार प्रभु सूर के नैन दोउ,
रहैं, अरु नित्य नर-देह पाऊँ ॥३२॥

अद्भुत कौतुक देखि सखि री, श्री वृन्दावन होड परी री ।
उत घन उदित सहित सौदामिनि, इतै मुदित राधिका हरी री ॥
उत बगपाँति सोभित इत सुन्दर, धाम विलास सुदेश खरी री।
उत घन गरज इहाँ मुरली धुनि, जलधर उत इत अमृत भरी री ॥
उतहि इन्द्रधनु इत बनमाला, अति विचित्र हरि कण्ठ धरी री।
सूर साथ प्रभु कुँअरि राधिका, गगन की सोभा दूरि करी री ॥३३॥

कृष्ण प्रवास

मथुरापुर में सोर परचो।
गरज कंस-बस सब साजे, मुख कौ नीर हरचो।।
पीरो भयो फेफरी अधरन, हिरदै अतिहि डरयो।
नन्द महर के सुत दोउ सुनिकै, नारिन हर्ष भरचो।।
इन्दु वदन नव जलद सुभग तनु खंजन नैन कह्यो।
'सूर' स्याम देखत पुर नारी उर महँ प्रेम भरचो।।३४।।

रथ पर देखि हरि बलराम।
निरखि कोमल चारु मूरति, हृदय मुकता-दाम।।
मुकुट कुंडल पीतपट छवि, अनुज भ्राता स्याम।
रोहिनीसुत एक कुंडल, गौरतनु सुखधाम ।।
जननि कैसे धरचो धीरज, कहति सब पुरवाम।
बोलि पठये कंस इनकों करै धौं कहा काम ।।
जोरि कर विधि सौं मनावति, ले असीसं नाम।
न्हात बार न खसै इनकौ, कुसल पहुंचै धाम।।
कंस कौ निर्बंस ह्वै है, करत इन पर ताम ।
सूर के प्रभु नँदसुवन दोउ, हंस बाल उपाम।।३५।।

देख री, आजु नैन भरि, हरिजू के रथ की सोभा।
योग-जज्ञ-जप-तप-तीरथ-व्रत, कीजत है जेहि लोभा।।
चारु चक्र मनि खचित मनोहर, चंचल चमर पताका।
श्वेत छत्र मनो ससि प्राची दिसि, उदय कियो निसि राका।
घन तन श्याम सुदेश पीत पट, सीस मुकुट उर माला।
जनु दामिनि घन रवि तारागन, प्रगट एक ही काला।।
उपजत छबि कर अघर संख मिलि, सुनियत सब्द प्रसंसा।
मानहु अरुन कमल मंडल में कूजत है कलहंसा।।

मदनगोपाल देखियत हैं सब, अब दुख सोक विसारी।
पठये हैं सुफलक-सुत गोकुल लैंन जो इहाँ सिधारी।।
आनंदित चित जननि तात हित, कृष्ण मिलन जिय भाए।
'सूरदास' जदुकुल हित कारन, माधौ मधुपुरि आए।।३६।।

वे देखो आवत हैं ब्रज तें बने वनमाली।
तन घनस्याम, सुदेस पीत-पट सुन्दर नैन विसाली।।
जिन पहिले पलना पौढ़े पय पियत पूतना दाली।
अघव बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि, जल ते काढ़्यो काली।
जिन हति संकट प्रलम्व तृनाबृत, इन्द्र प्रतीज्ञा टाली।
एत पर नहि तजत अघोड़ी, कपटी कंस कुचाली।।
अव विधु बदन बिलोकि सुलोचना स्रवन सुनत हीं थाली।
धन्य सुगोकुल नारि 'सुर' प्रभु प्रकट प्रीति प्रतिपाली।।३७।।

एई माधौ जिन मधु मारे री।
जन्मत ही गोकुल सुख दीन्हों, नंद दुलार वहुत सारे री।।
केसी तृनावृत्त वृषभासुर, हती पूतना जव वारे री।।
इन्द्र को वर्षत गिरि धार्यो; महावज्र ब्रज टारे री।।
वल समेत नृप कन्स बोलाये रचे रंग अति भारे री।
'सूर' असीस देति सव सुंदरिअ जीवहिं अपनी माँ प्यारे री।।३८।।

भये सखि नैन सनाथ हमारे।
मदनगोपाल देखत हीं सजनी, सव दुख सोक बिसारे।।
पठए हैं सुफलक सुत गोकुल, लैन जो इहाँ सिधारे।
मल्लयुद्ध प्रति कंस कुटिल, मति छल करि इहाँ हकारे।।
मुष्टिक अरु चाणूर सैल सम, सुनियत है अति भारे।
कोमल कमल समान देखियत ये जसुमति के बारे।।

ह्वै है जीत विधाता इनकी, करहु सहाय सँवारे।
'सूरदास' चिरजीवहु युग-युग दुष्ट दलें दोउ नन्ददुलारे ।।३९।।

भोर भये जागौ नँदलाल।
नंदराइ निरखत मुख हरषे पुनि आये सब ग्वाल।।
देखि पुरी अति परम मनोहर कंचन कोट विसाल।
कहन लगे सब 'सूर' प्रभू सों होहु इहाँ भूपाल।।४०।।

हरि बल सोभित यों अनुहार।
ससि अरु सूर उदय भये मानो दोऊ एकहि वार।।
ग्वालबाल सँग करत कौतूहल, गवने पुरी मँझार।
नगर नारि सुनि, देखत धाई, सुत पति गेह विसार।।
उलटि अङ्ग आभूषण साजत, रही न देह सँभार।
'सूरदास' प्रभु दरस देखिके, भई चकृत न विचार।।४१।।

वै देखौ आवत दोऊ जन।
गौर स्याम नट नील पीत पट, जनु दामिनी मिली घन।।
लोचन बंक बिसाल चितै कै, हरत तबै सबके मन।
कुंडल स्रवन कनक मनि भूषित, जड़ित लाल अति लोल मीन तन।।
बंदन चित्र विचित्र अंग सिर, कुसुम सुवास धरे नँदनन्दन।
बलि बलि जाउँ चलहिं जेहि मारग, संग लगाइ लेत मधुकर गन।।
धन्य सु भूमि जहाँ पग धारे, जीतहिंगे रिपु आजु रंगरन।
'सूरदास' वे नगर-नारि सब, लेत बलाइ वारि अंचल सन।।४२।।

तब बोले हरि नंद सों, मधुरे करि बानी।
गर्ग वचन तुम सों कही, नहि निहचै जानी।।
मैं आयो संसार में, भुव भार उतारन।
तिनको तुम धनि धन्य हौ, कीन्हा प्रतिपारन।।

मातु पिता मेरे नहीं, तुम तें अरु कोऊ।
एक बेर ब्रज लोग कों, मिलिहों सुनो सोऊ।।
मिलन हिलन दिन चारि कौ, तुमतौ सब जानौ।
मा कों तुम अति सुख दियो, सो कहा बखानौ।।
मथुरा नर-नारी सुनौ, व्याकुल ब्रजवासी।
'सूर' मधुपुरी आइकै, ए भाए अविनासी।।४३।।

निठुर वचन जिनि कहौ कन्हाई। अतिहीं दुसह सह्यो नहिं जाई।।
तुम हँसिकै बोलत ए बानी। मेरे नयन भरत हैं पानी।।
अब ए बोल कबहुँ जिनि बोलौ। तुरत चलौ ब्रज आँगन डोलौ।।
पंथ निहारत जसुमति ह्वै है। तुम बिन मोकों देखि सुखै है।।
तब हलधर नन्दहिं समुझावत। कछुकरि काज तुरत ब्रज आवत।।
जननि अकेली व्याकुल ह्वै है। तुमहि गए कछु धीरज लैहै।।
बहुत कियो प्रतिपाल हमारो। जाइ कहाँ उर ध्यान तुम्हारौ।।
व्याकुल होइ जननि जिनि पावै। बार-बार कहि-कहि समुझावै।।
व्याकुल नंद सुनत ए बानी। डसि मानौ नागिनी परानी।।
व्याकुल सखागोप भए व्याकुल। अंतक दसा भयो भय आकुल।।
'सूर' स्याम मुख निरखत ठाढ़े। मानो चितेरे लिखि सब काढ़े।।४४।।

गोपालराइ हौं न चरन तजि जैहौं।
तुमहिं छांड़ि मधुबन मेरे मोहन, कहा जाइ ब्रज लैहौं।।
कैहौं कहा जाइ जसुमति सों जब सनमुख उठि ऐहै।
प्रात समय दधि मथत, छांड़िकै कहि कलेऊ दैहै।।
बारह वर्ष दयो हम ठाढ़ो, यह प्रताप बिनु जानें।
अब तुम प्रगट भए वसुदेवसुत, गर्गबचन परमानें।।
कत हम लागि महारिपु मारे, कत आपदा बिनासी।
डारि न दियो कमल कर तें गिरि दबि मरते ब्रजवासी।।

वासर सङ्ग सखा सब लीन्हें, टेरि न धेनु चरैहौ।
क्यों रहि हैं मेरे प्रान दरस बिनु, जब संध्या नहिं ऐहौ।।
अब तुम राज्य करौ कोटिक युग, मात-पिता सुख दैहौ।
कबहुँक तात-तात मेरे मोहन, या मुख मो सौं कैहौ।।
ऊरध स्वास चरन गति थाक्यो, नैन नीर न रहाइ।
'सूर' नन्द बिछुरे की बेदन, मो पै कहिय न जाइ।।४५।।

बेगि ब्रज को फिरिए नँदराइ।
हमहिं तुमहिं सुत, तात कौ नातो, और परचो है आइ।।
बहुत कियो प्रतिपाल हमारौ, सो नहिं जी तें जाइ।
जहां रहें तहँ तहाँ तुम्हारे, डारौ जिनि बिसराइ।।
माया मोह मिलन अरु बिछुरन, ऐसे ही जग जाइ।
'सूर' स्याम के निठुर बचन सुनि, रहे नयन जल छाइ।।४६।।

यह सुनि भए ब्याकुल नंद।
निठुर बानी कही हरि, परि गये दुखफंद।।
निरखि मुख-मुख रहे चकृत, सखा अरु सब गोप।
चरित ए अक्रूर कीन्हें, करत मन-मन कोप।।
धाइ चरनन परे हरि के, चलहु ब्रज कों स्याम।
कंस असुर समेत मारे, सुरन के करि काम।।
मोचि बन्धन राज दीन्हों, हर्ष भए बसुदेव।
'सूर' जसुमति बिनु तुम्हारे, कौन जानै भेव।।४७।।

नन्द बिदा ह्वै घोष सिधारौ।
बिछुरन मिलन रच्यो बिधि ऐसो, यह संकोच निवारौ।।
कहियो जाइ जसोदा आगे, नैन नीर जिनि ढारौ।
सेवा करी जानि सुत अपने कियो प्रतिपाल हमारौ।।

हमैं तुम्हैं कछु अन्तर नाहीं तुम जिय ज्ञान बिचारौ।
'सूरदास' प्रभु यह विनती है, उर जिन प्रीति बिसारौ।।४८।।

मेरे मोहन, तुमहिं बिना नहिं जैहौं।
महरि दौरि आगे, जग ऐहै, कहा ताहि मैं कैहौं।।
माखन मथि राख्यो ह्वै है, तुमहेतु, चलौ मेरे वारे।
निठुर भए मधुपुरी आइकै, काहे असुरन मारे।।
लखि पायो वसुदेव देवकी, अरु सुख सुरन दियो।
यहै कहत नँद गोप सखा, सब बिदरन चहत हियो।।
तब माया जड़ता उपजाई, ऐसो प्रभु जदुराई।
'सूर' नन्द परबोधि पठावत, निठुर ठगोरी लाई।।४९।।

नन्दहिं कहत हरि ब्रज जाहु।
कितिक मथुरा ब्रजहिं अन्तर, जिय कहा पछिताहु।।
कहा व्याकुल होत अति ही दूरिहूँ, कहुँ जात।
निठुर उर में ज्ञान बरत्यो, मानि लीन्हों तात।।
नन्द भए कर जोर ठाढ़े, तुम कहे ब्रज जाउँ।
'सूर' मुख यह कहत बानी, चित नहीं कहुँ ठाउँ।।५०।।

तुम मेरी प्रभुता बहुत करी।
परम गँवार ग्वाल पसुपालक, नीच दसा लै उच्च धरी।।
रोग दोष संताप जनम के प्रगटत हो तुम सबै हरी।
अष्ट महासिधि और नव निधि, कर जोरे मेरे द्वार खरी।।
तीनि लोक अरु भुवन चतुर्दसि, वेद पुरानन सही परी।
'सूरदास' प्रभु अपने जन कों, देत परम सुख घरी-घरी।।५१।।

उठे कहि माधौ इतनी बात।
जिते मान सेवा तुम कीन्हीं बदलो दयो न जात।।

पुत्र हेतु प्रतिपाल कियो, तुम जैसे जननी तात।
गोकुल बसत खवावत खेलत, दिवस न जान्यो जात।।
होहु विदा घर जाहु गुसाईं, माने रहियो नात।
ठाढ़ो थक्यो उतर नहिं आवै लोचन जल न समात।।
भए बलहीन खीन तनु कंपित ज्यों बयारि बस पात।
धकधकात मन वहुत 'सूर' उठि चले नन्द पछितात।।५२।।

फिरि करि नन्द न उत्तर दीन्हों।
रोम-रोम भरि गयो वचन सुनि, मनहुँ चित्र लिखि कीन्हों।।
यह तो परम्परा चलि आई, सुख दुख लाभ अरु हानि।
हल पर बवा मया करि रहियो सुत अपनौ जिय जानि।।
को जलपै काके पल लागे, निरखि बदन सिर नायो।
दुख समूह हृदय परिपूरन चलत कंठ भरि आयो।।
अघ अध पद भुव भई, कोटि गिरि जो लगि गोकुल पैठो।
'सूरदास' अस कठिन कुलिस तें अजहुँ रहतो तनु बैठो।।५३।।

चले नन्द ब्रज कों समुहाइ।
गोप सखा हरि वोधि पठाए, सबै चले अकुलाइ।।
काहू सुधि न रही तन की कछु, लटपटात परे पाँइ।
गोकुल जात फिरत पुनि मधुवन, मन पुनि उतहि चलाइ।।
विरह सिन्धु में परे चेत बिन, ऐसेहि चले बहाइ।
'सूर' स्याम वलराम छांड़िकै, ब्रज आए नियराइ।।५४।।

बार-बार मग जोवति माता। व्याकुल बिन मोहन बल भ्राता।।
आवत देखि गोप नँद साथा। विवि वालक विनु भई अनाथा।।
धाइ धेनु वच्छ ज्यों ऐसे। माखन विना रहे वौ कैसे।।
ब्रज नारी हरषित सब धाईं। महरि जहाँ तहँ आतुर आईं।।
हरषित मात रोहिनी धाई। उर भरि हलधर लेहुँ कन्हाई।।

देखे नन्द गोप सब देखे। बल मोहन कों तहाँ न पेखे।।
आतुर मिलन काज ब्रज नारी। 'सूर' मधुपुरी रहे मुरारी।।५५।।

स्याम राम मथुरा तजि नन्द ब्रजहिं आए।
बार-बार महरि कहत जनक धृग कहाए।।
कहुँ कहनि सुनी नहीं दसरथ की करनी।।
यह सुन नन्द व्याकुल ह्वै परै मुरछि धरनी।।
टेरि-टेरि पुहुमि परति व्याकुल ब्रज नारी।
'सूर' प्रभु कौन दोष हम को जु बिसारी।।५६।।

उलटि पग कैसें दीन्हों नन्द।
छाँड़े कहाँ उभय सुत, मोहन धृग जीवन मति मंद।।
कै तुम धन यौवन मदमाते, कै तुम छूटे बंद।
सुफलक सुत बैरी भयो हमको, लै गयो आनँदकंद।।
राम-कृष्ण बिन कैसे जीजै, कठिन प्रीति के फंद।
'सूरदास' प्रभु भई अभागिन तुम बिन गोकुलचन्द।।५७।।

कोउ ढोटा गोकुलनायक मेरे।
कहे नन्द छाँड़ि तुम आए, प्रान जीवन सब केरे।।
तिनके जात बहुत दुख पायो, रौरि परी यहि खेरे।
गोसुत गाइ फिरत है दह दिसि, बने चरित्र न थोरे।।
प्रीति न करी राम दसरथ की, प्रान तजे बिन हेरे।
'सूर' नन्द सौं कहति जसोदा प्रबल पाप सब मेरे।।५८।।

जसोदा कान्ह-कान्ह कै बूझै।
फूटि न गईं तिहारी चारौं, कैसे मारग सूझै।।
इक तनु जरो जात बिन देखे अब तुम दीने फूंक।
यह छतियाँ मेरे कुँवर कान्ह बिनु ,फटि न गई द्वै टूक।।

धृग तुम धृग वै चरन अहो पति, अध बोलत उठि धाए।
'सूर' स्याम विछुरन की हम पै दैन वधाई आए ।।५६।।

नन्द हरि तुमसों कहा कह्यो।
सुनि सुनि निठुर बचन मोहन के, क्यों करि हृदय रह्यो।।
छाँड़ि सनेह चले मंदिर, कत दौरि न चरन गह्यो।
फाटि न गई वज्र की छाती कत यहि सूल सह्यो।।
सुरति करत मोहन की वातें, नैनन नीर वह्यो।
सुधि न रही अतिगलित गात भयो जनु डसि गयो अह्यो।।
कृष्ण छाँड़ि गोकुल कत आए, चाखन दूध दह्यो।
तजे न प्रान 'सूर' दशरथ लौं, हुतौ जनम निवह्यो ।।६०।।

मेरो अति प्यारो नँदनन्द।
आए कहाँ छांड़ि तुम उनकों, पोच करी मति मंद।
वल मोहन दोउ पीड़ नयन की निरखत ही आनन्द।।
सरवर घोप कुमोदिनि ब्रज-जन, स्याम वदन विन चंद।
काहे न पांइ परे वसुदेव के, घालि पाग नरे फंद।
'सूरदास' प्रभु अवकै पठवहु, सकल लाक मुनिवन्द ।।६१।।

तव तू मारिवोई करति।
रिसनि आगे कहि जो आवत, अव लै भाँड़े भरति।।
रोसकै कर दांवरी लै, फिरति घर-घर धरति।
कठिन हिय करि जव जो वाँध्यो, अव वृथा करि मरति।।
नृपति कंस बुलाय पठयो, वहुन कै जिय डरति।
इह कछू विपरीत मो मन, मांझ देखी परति।।
होनहारी होइहै सोई अव, इहाँ कत अरति।
'सूर' तव किन फेरि राखे; पाइ अब केहि परति ।।६२।।

कहा ल्यायो तजि प्रान जीवन धन।
राम कृष्ण मुरछि परी, धर जसुदा देखत लोगन।।
विद्यमान हरि बचन स्रवन मुनि, कैसे गए न प्रान छूटि तन।
सुनी कथा दसरथ की तऊ नहिं, लाज भई तेरे मन।।
मंद हीन अति भयो नन्द अति; होत कहा पछिताने छिन-छिन।
'सूर' नन्द फिर जाहु मधुपुरी, ल्यावहु सुत करि कोटि जतन।।६३।।

कहौ नन्द कहाँ छांड़े कुमार।
कैसे प्राण रहे सुत बिछुरत पूछैं गोपी ग्वार।।
करुना करै जसोदा माता, नैनन नीन वहै असरार।
चितवन नन्द ठगे से ठाढ़े मानो हारयो हेम जुवार।।
मुरली नहि सुनिअत ब्रज में, सुर नर मूनि नहिं करत ह्वै वार।
'सूरदास' प्रभु के बिछुरे ते, कोऊ नहीं झाँकते द्वार।।६४।।

ग्वालन कही ऐसी जाइ।
भए हरि मधुपुरी राजा, बड़े वंश कहाइ।।
सूत मागध वदत विरदहि वरनि वसुद्यौ रात।
राजभूपन अंग भ्राजत, अहिर कहत लजात।
मातु-पितु वसुदेव देवकि, नन्द जसुमति नाहि।
वह सुनत जल नैन ढारत, मींजि कर पछिताहिं।
मिली कुबिजा मलै, लैके सो भई अरधंग।
'सूर' प्रभु वस भए, ताके करत नाना रंग।।६५।।

हरि की एकौ बात न जानी।
कहो कंत कहां तज्यो स्याम कों, अतिहि विकल पूछति नन्दरानी।।
अब ब्रज सूनो भयो गिरधर बिनु गोकुल मनि बिलगानी।
दसरथ प्रान तज्यो छिन भीतर, बिछुरत सारंगपानी।।

ठाढ़ी रही ठगोरी डारी, बोलत गदगद बानी।
'सूरदास' प्रभु गोकुल तजि गए, मथुरा ही मनमानी।।६६।।

लै आवहु गोकुल गोप कहि।
पाँइन परिकै बहु बिनती करि, बलि छलि बहु बिसार्लहि।।
अबकी बार नेंक देखरावहु, यहि ब्रज नन्द, आपने लार्लहि।
गाइन गनत ग्वाल गोसुत संग, सिखवत बेनु रसार्लहि।।
यद्यपि महाराज सुख सम्पति, कौन गिनै मोती मनि लार्लहि।
तदपि 'सूर' बछिन न तजत हैं, वा घुंघुची की मार्लहि।।६७।।

सराहौं तेरो नन्द हियो।
मोहन सो सुत छांड़ि मधुपुरी, गोकुल आनि जियो।।
कहा कहौ मेरे लाल लडैते, जब तू बिदा कियो।
जीवन प्रान हमारे ब्रज को, बसुदेव छीनि लियो।।
कह्यो पुकारि प.रि पचिहारी, बरजत गमन कियो।
'सूरदास' प्रभु स्यामलाल धन लै पर हाथ दियो।।६८।।

यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख योग।।
निसि बासर छतियाँ लै-लै कै, हालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि ह्वै हैं कब, मोहन मोद खवाऊँ।।
जा कारन मुनि ध्यान धरें, शिव अंग विभूति लगावें।
सो बालक लीला धरि गोकुल ऊखल साथ बँधावें।।
बिदरत नहीं बज्र कौ हिरदय, हरि वियोग क्यों सहिए।
'सूरदास' प्रभु कमलनैन बिधु, कौने बिधि ब्रज रहिए।।६९।।

माई हौं किन संग गई।
हौ ए दिन जानत ही बूड़ी, लोगन की सिखई।।

मोंको बैरी भए कुटुंब सब, फेरि-फेरि ब्रज गाड़ी।
जौ हौं कैंसेहु जान पावतों, तौ कत आवत छांड़ी ।।
अब हौं जाइ यमुन जल बहिहों, कहा करौ मोहि राखो ।
'सूरदास' वा भाई फिरत, हौ ज्यों मधु तोरे माखी ।।७०।।

हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं।
दासी ह्वै वसुदेवराइ की दरसन देखत रैहौं।।
राखि-राखि एते दिवसन मोहि, कहा कियो तुम नीकौ।
सोऊ तौं अक्रूर गए लै, तनक खिलौना जी को।
मोहि देखिकै लोग हँसे किन, अरु किन कान्ह हँसै।
सूर असीम जाइ दैहो, जिनि, न्हातहू वार खसै ।।७१।।

पंथी इतनी कहियो वात।
तुम विनु इह कुँवरवर मेरे होत जिते उतपात।।
बकीं अघासुर टरत न टारे, वालक बर्नाहि न जात।
ब्रज पींजरे, रूँधि मानों राखे, निकसन कों अकुलात।।
गोपी गाय सकल लघु दीरघ पीत वरन कृस गात।
परम अनाथ देखियत तुम विनु केहि अवलंवियै तात ।।
कान्ह कान्ह कै टेरत तव धौं, अब कैसे जिय मानत।
यह व्यवहार आजु लौं है, ब्रज कपट नाट छल ठानत ।।
दसहू दिसि तें उदित हैं, दावानल के कोट।
आँखिन मूंदि रहत सन्मुख ह्वै, नाम कवच दै ओट ।।
ए सब दुष्ट हते अरि जेते, भए एक ही पेट।
सत्वर सूर सहाइ करौ अब, समुझि पुरातन हेट ।।७२।।

संदेसौ देवकी सों कहियो।
हौं तौ धाइ तिहारे सुत की माया करति नित रहियो ।।

जदपि टेव तुम जानति उनकी तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रातहिं उठत तुम्हारे कान्हहि माखन रोटी भावै।।
तेल उवटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम करि-करि न्हाते।।
सूर पथिक, सुनि मोहिं रैन-दिन बढ़यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच।।७३।।

हौं इहां गोकुल ही तें पाई।
देवकी माँई पाँइ लगति हौं, जसुमति इहां पठाई।।
तुम सों महरि जुहार कह्यो है, कहहु तो तुमहिं सुनाऊँ।
बारेक वहुरि तुम्हारें सुत कौ कैसेहुँ दरसन पाऊँ।।
तुम जननी जग विदित सूर प्रभु हों हरि की हित धाइ।
जो पटवहु तौ पाहुन नाते, आवहि वदन दिखाइ।।७४।।

कहियो श्याम सों समुझाइ।
वह नातो नहिं मानत मोहन, मनो तुम्हारी धाइ।।
एक वार माखन के काजे, राखे में अटकाई।
वाको विलग मानो जिन मोहन, लागत मोहिं वलाई।।
बारहिं वार इहै लव लागी; गहे पथिक के पाँइ।
सूरदास या जननी को जिय, राखौ वदन देखाइ।।७५।।

यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख योग।
प्रातकाल उठि माखन रोटी, को विन माँगे दैहै।
को उहि मेरे कुँवर कान्ह कों, छिन-छिन अंग में लैहै।।
कहियो पथिक जाइ घर आवहु, राम कृष्ण दोउ भैया।।
'सूर' श्याम कत होत दुखारी, जिनके मो सी मैया।।७६।।

मेरो कान्ह कमलदल लोचन।
अबकी बेर बहुरि फिरि आवहु, कहाँ लगे जिय सोचन।
यह लालसा होत जिय मेरे, बैठी देखत रैहौं।
गाइ चरावन कान्ह कुँवर सों, भूलि न कबहूँ कैहौं।।
करत अन्याय न बरजौं कबहूँ, अरु माखन की चोरी।
अपने जियत नैन भरि देखौं, हरि हलधर की जोरी।।
एक बेर ह्वै जाहु इहाँ लौं, अनत कहूँ के ऊरत।
चारिहु दिवस आनि सुख दीजै, सूर पहुनई सूरत।।७७।।

विरहिणी गोपिका

देख सखी उत है वह गाउँ।
जहाँ बसत नँदलाल हमारे, मोहन मथुरा नाउँ।।
कालिंदी के कूल रहत हैं, परम मनोहर ठाउँ।
जो तनु पंख होइ सुनु सजनी, आजु अबहिं उड़ि जाउँ।।
होनो होइ होउ सो अबहीं, यहि ब्रज अन्न न खाउँ।
'सूरदास' नँदनन्दन सों रति लोगन कहा डराउँ।।७८।।

अब वर्षा को आगम आयो।
ऐसे निठुर भये नँदनन्दन संदेसो न पठायो।।
बादर घोर उठे चहुँ दिसि तें, जलघर गरजि सुनायो।
एकै सूल रही मेरे जिय, बहुरि नहीं ब्रज छायो।।
दादुर मोर पपीहा बोलत, कोकिल सब्द सुनायो।
'सूरदास' के प्रभु सों कहियो, नैनन है झर लायो।।७९।।

ब्रज पर सजि पावस दल आयो।
धुरवा धुंधि बढ़ी दसहूँ दिसि, गरजि निसान बजायो।।
चातक मोर इतर पै दागन, करन अवाजें कोयल।
श्याम घटा गज असन वाजि रथ चित बगपाँति सजोयल।।

दामिनि कर करवार बूंद सर, इहि विधि साजै सैन।
निधरक भयो चल्यो ब्रज आवत, अग्र फौजपति मैन।।
अवला हमें जानिकै तुम वल, कहौ कौन विधि कीजै।
'सूरश्याम' अव के इहि औसर, आनि राखि ब्रज लीजै ।।८०।।

ऐसे वादर ता दिन आये, जा दिन श्याम गोवर्धन धारयो।
गरजि गरजि घन वरसन लागे, मनो सुरपति निज पैर सँभारयो ।।
सबै संयोग जुरो है सजनी, हठि करि घोप उजारयो।
अब को सात दिवस राखैगो, दूर भयो ब्रज को रखवारयो ।।
जब वल स्याम हुते या ब्रज में; काहू देव न ऐसो डारयो।
अब यह भूमि भयानक लागै, विधिना वहुरि कंस अवतारयो ।।
अब इह सुरति करै को हमरी, या ब्रज कोउ ना हमारयो।
सूरदास अति विकल बिरहनो, गोपिन पिछलो प्रेम सँभारयो ।।८१।।

वहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो।
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नाउँ तुम्हारो।
देखो सकल विचारि सखी जिय, विछुरन को दुख न्यारो ।।
जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम वान अनियारो।
सूरदास प्रभु स्वाति बूंद लगि, तज्यो सिंधु करि खारो ।।८२।।

हौं तो मोहन के विरह जरी रे तू कत जारत।
रे पापी तू पंखि पपीहा, पिऊ पिऊ अधराति पुकारत ।।
सव जग सुखी दुखी तू जल बिनु, तऊ न तनु की बिथहिं विचारत।
कहा कठिन करतूति न समुझत कहा मृतक अवलनि सर मारत।।
तू सठ वकत सतावत काहू, होत उहै अपने उर आरत।
सूर स्याम बिनु ब्रज पर बोलत, हठि अगिलेऊ जनम विगारत।।८३।।

सरद समैहू स्याम न आए।
को जानै काहे तें सजनी, कहुँ विरहिन विरमाए।।
अमल अकास कास कुसुमित छिति, लक्षण स्वाति जनाए।
सर सरिता सागर जल उज्ज्वल अलिकुल, कमल सुहाए।।
आह मयंक मकरन्द कन्द हति, दाहक गरल जिवाए।
त्रिय सब रङ्ग सङ्ग मिलि सुन्दरि, रचि सचि सींच सिराए।।
सूनी सेज तुषार जमत, चिरहास चन्दन बाए।
अबलहि आस 'सूर' मिलिबे को भए ब्रजनाथ पराए।।८४।।

छूटि गई ससि सीतलताई।
मनु मोंहि जारि भसम कियो चाहत, सा जत मनो कलङ्क तनु काई।।
याहि ते स्याम अकास देखिये, मानो धूम रह्यो लपटाई।
ता ऊपर दौ देत किरनि उर, उड़ुगण काउनै चढ़ि इत आई।।
राहु केतु दोउ जोरि एक करि, कहि इहि सबै जरा कहँ पाई।
ग्रसे ते न पचि जात पाप में, कहत सूर बिरहिन दुखदाई।।८५।।

यह ससिसीतल काहे ते कहियत
मीनकेतु अम्बुज आनन्दित, तातें ताहित लहियत।।
बिरहिन अरु कमलनि त्रासत कहुँ, अपकारी रथ नहियत।
'सूरदास' प्रभु मधुबन गौने, तौ इतनो दुख सहियत।।८६।।

कोऊ वरजौ री या चन्दहि।
अति ही क्रोध करत हम ऊपर, कुमुदिन कुल आनन्दहि।।
कहाँ कुहू कहँ रवि अरु तमचुर, कहाँ वलाहक कारे।
चलत न चपल रहत थकिकै रथ, विरहिन के तनु जारे।।
विंदति सैल उदधि पन्नग कों, सापति कमठ कठोरहिं।
देति असीस जरा देवी कों, राहु केतु किन जोरहिं।।

ज्यों जलहीन मीन तनु तलफति, ऐसी गति ब्रजबालहिं।
'सूरदास' प्रभु आनि मिलावहु मोहन मदन गोपालहिं ।।८७।।

उद्धव-संदेश

पहिले प्रनाम नँदराइ सों।
ता पीछे मेरो पालागन कहियो, जसुमति माइ सों ।।
एक बात बरसाने लौं, जाइ सबै सुधि लीजो।
कहि वृषभानु महरि सों, मेरौ, समाचार सब दीजो ।।
श्रीदामा आदि सकल ग्वालन को, मेरे हित हिय भेंटियो।
सुख सन्देश सुनाइ सबनि कौ, दिन-दिन कौ दुख मेटियो ।।
मित्र एक मन बसत हमारे, ताहि मिले सुख पाइहौ।
करि करि समाधान नीकी विधि, मोहि को माथौ नाइहौ ।।
डरियहु जनि तुम सघन कुंज में, हैं तहँ के तरु भारी।
वृन्दावन मति रहति निरन्तर, कबहुँ न होति नियारी ।।
ऊधौ सों समुझाइ प्रकट करि, अपने मन की बीती।
'सूरदास' स्वामी सो छलसों, कही सकल ब्रज प्रीती ।।८८।।

हम तौ तब ही ते जोग लियो।
जब ही तें मधुकर मधुबन कों, मोहन गवन कियो ।।
रहित सनेह सरोरुह सब तन, श्रीखंड भस्म चढ़ाये।
पहिरि मेखला चीर चिरातन, पुनि पुनि फेरि सिआये ।।
श्रुति ताटंक नयन मुद्रावली, औधि अधार अधारी।
दरसन भिक्षा मांगत डोलत लोचन पात्र पसारी ।।
बांधी बेन कंठ शृंगी पिय, सुमिरि-सुमिरि गुन गावत।
कर वर बेत दंड उर-उर तन, सुनत स्वान दुख धावत ।।
गोरख सब्द पुकारत आरत रस रसना अनुराग।
भोग भुगति भूलेहु भावै, नहिं भरी बिरह बैराग ।।

भोगी को देखहु या ब्रज में योग दैन जेहि आये ।
देखी सिद्धि तिहारे सिद्ध की, जिनि तुम इहाँ पठाये ।।
सूर सुमति प्रभु तुमहि लखायो, हमरे सोई ध्यान ।
अलि चलि औरहि ठौर देखावहु, अपनों फोटक ज्ञान ।।८६।।

उधौ ब्रज की दसा विचारौ ।
ता पाछे यह सिद्ध आपनी, जोग कथा विस्तारौ ।।
जा कारन तुम पठये माधौ, सो सोचौ जिय माहीं ।
कितनौ बीच विरह परमारथ, जानत हौं किधौं नाहीं ।।
तुम परवीन चतुर कहियत हौ, संतन निकट रहत हौ ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिरि फिरि कहा गहत हौ ।।
वह मुसकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तें टारौं ।
जोग जुगति अरु मुकुति परमनिधि वा मुरली पर वारौं ।।
जिहि उर कमलनयन जु वसत हैं तिहि निर्गुन क्यों आवै ।
'सूरदास' सों भजन वहाऊँ, जाहि दूसरों भावै ।।९०।।

हमकों हरि की कथा सुनाउ ।
अपनी ग्यान-कथा हो ऊधौ, मथुरा ही लै जाउ ।।
नगर-नारि नीके समुझेंगी, तेरो वचन बनाउ ।
पालागौं ऐसी इन बातनि, उनहीं जाइ रिझाउ ।।
जो सुचि सखा स्यामसुन्दर कौ अरु जिय अति सतिभाव ।
तौ वारक आतुर इन नैनन, वह मुख आनि देखाउ ।।
जो कोउ कोटि करै कैसेहू, बिधि विद्या व्यौसाउ ।
तौ सुन 'सूर' मीन जलकें विन नाहिन और उपाय ।।९१।।

और सकल अंगन तें ऊधौ, अँखियाँ वहुत दुखारी ।
अधिक पिराति सिराति न कवहूँ, अमित जतन करि हारी ।।

चितवति मग सुनिमेष न मिलवति, विरह विकल भई भारी ।
भर गई विरह-वाइ माधो इन, इकटक रहत उघारी ।।
अलि आली गुरु ज्ञान सलाका, क्यों सहि सकति तुम्हारी ।
'सूर' सुअंजन आँजि रूप रस, आरति हरौ हमारी ।।६२।।

ऊधो, हम आजु भई बड़भागी ।
जिन अँखियन तुम स्याम विलोके, ते अँखिया हम लागी ।।
जैसे सुमन-बास लै आवत, पवन मधुप अनुरागी ।
अति आनन्द होत है तैसे, अंग-अंग सुखरागी ।।
ज्यों दरपन में हरसन देखत, दृष्टि परम रुचि लागी ।
तैसे 'सूर' मिले हरि हमकों, विरह-व्यथा तनु त्यागी ।।६३।।

ऊधौ, जोग योग हम नाहीं ।
अबला सार ग्यान कहा जानें, कैसे ध्यान धराहीं ।।
ते ए मूंदन नैन कहत हैं, हरि मूरति जा माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हम तें सुनी न जाहीं ।।
स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु, ए दुख कौन समाहीं ।
चंदन तजि अंग भसम वतावत, विरह अनल अति दाहीं ।।
जोगी भरमत जेहि लगि भूले, सो तौ है अपु माहीं ।
'सूर' स्याम तें न्यारे न पल छिन, ज्यों घट तें परछाहीं ।।६४।।

ऊधौ इतनी जाइ कहौ ।
सबै विरहिनि पाइँ लगति हैं, मथुरा कान्ह रहौ ।
भूलिहु जिनि आवहिं एहि गोकुल, तपत तरनि ज्यों चन्द ।
सुन्दर वदन स्याम कोमल तनु, क्यों सहि हैं नँदनंद ।।
मधुकर मोर प्रबल पिक चातक, वन उपवन चढ़ि बोलत ।
मनहुँ सिंह की गरज सुनत, गोवत्स दुखित तनुडोलत ।।

आसन भए अनल विष अहि सम, भूषन विविध बिहार ।
जित जित फिरत दुसहु द्रुम-द्रुम प्रति, धनुष धरे मनु मार ।।
तुम हो संत सदा उपकारी, जानत हौ सब रीति ।
सूर स्याम को बोलें विनु ब्रज, क्यों टारे यह ईति ।।९५।।

मधुकर इतनी कहिअहु जाइ ।
अति कृस गात भई ए तुम बिनु परम दुखारी गाइ ।।
जलसमूह बरसति दोउ आँखे हूँकति लीने नाउँ ।
जहाँ-जहाँ गोदोहन कीन्हो, सूंघति सोई ठाउँ ।।
परति पछार खाइ छिन ही छिन, अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहु 'सूर' काढ़ि डारी है, वारि मध्य तें मीन ।।९६।।

तुम विनु हम अनाथ ब्रजवासी ।
इतनो संदेसो कहियो ऊधौ, कमलनैन बिनु त्रासी ।।
जा दिन तें तुम हमसो विछुरे, भूख-नींद सब नासी ।।
विह्वल विकल कलहु न परत तनु, ज्यों जल मीन निकासी ।।
गोपी-ग्वाल-बाल वृन्दाबन खग-मृग फिरत-उदासी ।
सबई प्राण तज्यो चाहत हैं, को करवत को कासी ।।
अंचल जोरे करत विनती, मिलिवे को सब दासी ।
हमरो प्राणघात ह्वै निबरे, तुम्हरे जाने हाँसी ।।
मधुकर कुसुम न तजत सखीरी, छाँडि सकल अविनासी ।
'सूर' स्याम विन यह बन सूनो ससि बिन रैनि निरासी ।।९७।।

अब अति चकितवंत मन मेरो ।
आयो हौं निर्गुन उपदेसन, भयो सगुन को चेरो ।।
मैं कुछु ज्ञान कह्यो गीता को, तुमहिं न परयो निवेरो ।
अति अज्ञान जानिकै अपनो, दूत भयो सब केरो ।।
निज जन जानि हरि इहा पठायो दीनो गोक्ष घनेरो ।
'सूर' मधुप उठि चले मधुपुरी, बोरि योग को बेरो ।।९८।।

ऊधौ तिहारे पांइ लागति हौं, कहियो स्याम सों इतनी बात।
इतनी दूर वसत क्यों विसरे, अपनी जननी तात ॥
जा दिन तें मधुपुरी सिधारे, स्याम मनोहर गात।
ता दिन तें मेरे नैन पपीहा; दरस प्यास अकुलात ॥
जहँ खेलन कौ ठौर तुम्हारे, नंद देखि मुरझात ॥
जो कबहूँ उठि जात खरिक लै धाइ दुहावन प्रात ॥
दुहत देखि औरन के लरिका, प्रान निकसि नहिं जात।
'सूरदास' वहुरो कब देखौं, कोमल कर दधि खात ॥९९॥

तब तुम मेरे काहे को आये।
मथुरा क्यों न रहे यदुनन्दन, जो पै कान्ह देवकी जाए ॥
दूध दही काहे कों चोर्‌यो, काह को बन गाइ चराए।
अघ अरिष्ट काली दह काढ़यो, विष जल ते सब सखा जिआए।
'सूरदास' लोगन के भोरए; काहे कान्ह अब होत पराए ॥१००॥

ऊधौ हम ऐसे नहिं जानी।
सुत के हेत मरम नहिं पायो, प्रगटे सारँग पानी ॥
निसि-वासर छाती सों लाई, बालक लीला गाई।
ऐसे कबहूँ भाग होहिंगे, वहुरो गोद खेलाई ॥
को अब ग्वाल सखा सँग लीन्हें, साँझ समै ब्रज आवै।
को अब चोरि-चोरि दधि खैहै, मैया कवन बोलावै ॥
विदरति नाहि वज्र की छाती, हरि वियोग क्यों सहिए।
'सूरदास' अब नँदनंदन विनु कहो कौन विधि रहिए ॥१०१॥

तब तें छीन सरीर सुभाहु।
आधो भोजन सुबल करत है ग्वालन के उर दाहु ॥
नंद गोप पिछावरे डोलत, नैनन नीर प्रवाहु।
आनँद मिट्यो मिटी सब लीला, काहु न कम उतसाहु ॥

एक बेर बहुरो ब्रज आवहु दूध पतूखी खाहु ।
सूर सुपथ गोकुल जो बैठहु, उलटि मधुपुरी जाहु ।।१०२।।

कहियो जसुमति की आसीस ।
रहौ जहाँ पर तहाँ लाड़िले, जीवो कोटि वरीस ।।
मुरली दई दोहना घृत भरि, ऊधौ धरि लई सीस ।
इह घृत तौ उनहीं सुरभिन कौ, जो प्यारी जगदीस ।।
ऊधौ चलत सदा मिलि आए, ग्वालबाल दस बीस ।
अबकै यहाँ ब्रज फेरि बसावो, 'सूरदास' के ईस ।।१०३।।

ऊधौ, अँखियाँ अति अनुरागी ।
इकटक मग जोवति और रोवति, भूलेहु पलक न लागी ।।
दिन पावस पावस रितु आई, देखत हैं विदमान ।
अब धौं कहा कियो चाहत हौ, छाँड़हु निरगुन ग्यान ।।
सुन प्रिय सखा स्यामसुन्दर के, जानत सकल सुभाई ।
जैसे मिलैं 'सूर' के स्वामी, तैसो करहु उपाई ।।१०४।।

प्रेम प्रेम तें होइ, प्रेम तें पारहि जइयै ।
प्रेम बँधो संसार, प्रेम परमारथ लहियै ।।
एकै निहचै प्रेम कौ, जीवन मुक्ति रसाल ।
साँचो निहचै प्रेम कौ, जिहिरे मिलैं गोपाल ।।
ऊधौ कहि सत भाय, न्याय तुम्हारे मुख साँचै ।
जोग प्रेम रस कथा कहौ कंचन कै काँचे ।।
जाके पर है हूजिये, गहिये सोई नेम ।
मधुप हमारी सौं कहौ, जोग भलो कै प्रेम ।।
सुनि गोप के बैन नेम ऊधौ के भूले ।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजन में फूले ।।

खिन गोपी के पाँ परें, धन्य कोई है नेम ।
धाइ-धाइ द्रुम भेंटई, उधौ छाके प्रेम ।।
घनि गोपी धन ग्वाल, धन्य सुरभी वनचारी ।
घनि यह पावन भूमि, जहाँ गोविन्द अभिसारी ।।
उपदेसन आये हुते, मोहि भयो उपदेस ।
ऊधौ जदुपति पै चले, धरे गोप कौ भेस ।।
भूले जदुपति नाउँ, कह्यो गोपाल गोसाँई ।
एकवार ब्रज जाहु, देहु गोपिन दिखराई ।।
वृन्दावन सुख छाँड़ि कै, कहाँ बसे हो आइ ।
गोवर्द्धन-प्रभु जानि कै, ऊधौ पकरे पाँइ ।।
ऊधौ ब्रज को नेम-प्रेम, वरनो बस आई ।
उमँग्यो नयनन नीर, बात कछु कही न जाई ।।
सूर स्याम भूतल भये, रहे नयन जल छाई ।
पोंछि पीतपट सों कह्यो, आए जोग सिखाई ।।१०५।।

सुनिये ब्रज की दसा गोसाई ।
रथ की धुजा पीत पट भूषन, देखत ही उठि धाई ।।
जो तुम कहीं जोग की बातें, ते मैं सबै सुनाई ।
श्रवन मूँदि गुन करम तुम्हारे, प्रेम मगन मन गाई ।।
औरो कछु संदेश सखी इक, कहत दूर लौं आई ।
हुतो कछुक हमहू सों नातो, निपट कहा बिसराई ।।
'सूरदास' प्रभु वन विनोद करि, जो तुम गऊ चराई ।
ते गऊ दीन-हीन अति दीखें, मानों भई पराई ।।१०६।।

ब्रज के बिरही लोग दुखारे ।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुरवल तनु कारे ।।
नन्द जसोदा मारग जोवत, नित उठि साँझ सकारे ।
चहुँ दिसि 'कान्ह-कान्ह' करि टेरत, अँसुवन बहत पनारे ।।

गोपी गाइ ग्वाल गोसुत सब, ही अति दीन बिचारे ।
'सूरदास' प्रभु बिन यों सोभित, चन्द्र बिना ज्यों तारे ।।१०७।।

कहाँ लौं कहिये ब्रज की बात ।
सुनहु स्याम, तुम बिन उन लोगन, जैसे दिवस बिहात ।
गोपी ग्वाल गाइ गौसुत, वै मलिन वदन कृस गात ।
परम दीन जने सिसिर हेम हत अंबुज गन बिन पात ।।
जौ कोउ आवत देखि दूर तें, सब पूछत कुसलात ।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात ।।
पिक चातक वन वसन न पावहिं बायस वलिहिं न खात ।
सूरस्याम संदेसन के डर पथिक न उहि मग जात ।।१०८।।

हरिजी सुनौ वचन सुजान ।
बिरह व्याकुल छीन तन-मन, हीन लोचन प्रान ।।
इहै है संदेस ब्रज कौ, माधौ सुनहु निदान ।
मैं सबै ब्रज दीन देखे, ज्यों दिना निरभान ।।
तुम बिना सोभा न ज्यों, गृह बिना दीप भयान ।
आस स्वास उसाँस घट में, अवधि आसा प्रान ।।
जगत जीवन भक्त पालन, जगतनाथ कृपाल ।
करि जतन कछु 'सूर' के, प्रभु जो जियैं ब्रजवाल ।।१०९।।

हमारे स्याम चलन चहन हैं दूरि ।
मधुबन बसत आस हुती सजनी अब मरिहैं जु बिसूरि ।।
कौन कही कौन सुनि आई किहि रुख रथ की धूरि ।
संगहि सबै चलौ माधव के, न तौ मरिबो रूरि ।।
पच्छिम दिसि इक नगर द्वारिका, सिंधु रह्यो जल पूरि ।
'सूरदास' प्रभु बिनु क्यों जीहैं, जात सजीवन मूरि ।।११०।।

नैना भए अनाथ हमारे ।
मदनगोपाल वहाँ तें सजनी, सुनियत दूरि सिधारे ।।
वै जलधर हम मीन बापुरी, कैसे जिवहि निनारे :
हम चातक सुचकोर स्यामघन, वदन सुधानिधि प्यारे ।।
मधुवन बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे ।
सूरज स्याम करी पिय ऐसी, मृतकहु तें पुनि मारे ।।१११।।

सुदामा दैन्य निवारण

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ । हरि चरनारबिंद उर धरौ ।।
विप्र सुदामा सुमिरे हरी । ताकी सकल आपदा टरी ।।
कहौ सो कथा सुनौ चित्त धार । कहै सुनै सो लहै सुखसार ।।
विप्र सुदामा परम कुलीन । विष्णु भक्ति सों अति लवलीन ।।
भिच्छावृत्ति उदर नित भरै । निसि दिन हरि हरि सुमिरन करै ।।
नाम सुशीला ताकी नारी । पतिव्रता अति आज्ञाकारी ।।
पति जो कहै सो करै चितलाइ । 'सूर' कह्यो इक दिन मा भाइ ।।११२।।

कहि न सकति सकुचति इक बात ।
केतिक दूरि द्वारिका नगरी, काहे न द्विज यदुपति लौ जात ।।
जाके सखा स्यामसुन्दर से, श्रीपति सकल सुखन के दात ।
तिनके अछत आपने आलस, काहे कंत रहत कृस गात ।
कहियत परमउदार कृपानिधि अंतरजामी त्रिभुवनतात ।
आपुहि द्रवत देत दासन कों, रीझत हैं तुलसी के पात ।।
छाँड़ो सकुच बाँधि पट तंदुल, सूरज संग चलो उठि प्रात ।
लोचन सफल करो प्रभु अपने, हरि मुखकमल देखि बिलसात ।।११३।।

दूरहि तें देखे बलबीर ।
अपनो बालसखा सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर ।।

पौढ़े हुते पर्यंक परम रुचि, रुकमिनी चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाइ अगमने लीन्हे, मिलत नयन भरि आये नीर।।
तेहि आसन बैठारि स्यामघन, पूछी कुशल करौ मन धीर।
ल्याए हौ सु देहु किन हमको, अब कहा राखि दुरावत चीर।।
दरसन परम दृष्टि संभाषन, रहा न उर अतंर कुछ पीर।
'सूर' सुमति तंदुल चवात ही, कर पकरचो कमल भय-भीर।।११४।।

यतुपति देखि सुदामा आए।
विह्वल विकल छीन दारदि वस, करि प्रलाप रुकमिनी समुझाए।।
दृष्टि परे तें दिए संभाषण भुजा पसार अंक लै आए।
तंदुल देखि बहुत दुख उमग्यो, माँगु सुदामा जो मन भाए।।
भोजन करति गह्यो कर रुकमिनी, सोइ देहु जो मन न डुलावै।
'सूरदास' प्रभु नवनिधि दाता, जापर कृपा सोइ जन पावै।।११५।।

ऐसी प्रीति की वलि जाऊँ।
सिंहासन तजि चले मिलन को, सुनत सुदामा नाउँ।।
गुरुबांधव अरु विप्र जानि कै, चरनन हाथ पखारे।
अंकमाल दै कुसल वूझि कै, अर्धासन वैठारे।।
अर्धंगी बूझत मोहन कों, कैसे हितू तुम्हारे।
दुर्बल दीन छीन देखत हौं, पाउँ कहाँ तें धारे।।
संदीपन कें हम औ सुदामा पढ़े एक चटसार।
सूर स्याम की कौन चलावै, भक्तन कृपा अपार।।११६।।

गुरु गृह जब हम बन कों जात।
तोरत हमरे बदले लकरी, ये सहि दुख निज गात।।
एक दिवस बर्षा भइ वन में, रहि गये, ताही ठौर।
इनकी कृपा भयो नहि मोहि स्रम गुरु आए भोर।।
सो दिन मोहि बिसरत न सुदामा, जो कीन्हो उपकार।
प्रतिउपकार कहा करौं, सूरज भाषत आप मुरार।।११७।।

सुदामा गृह को गमन कियो।
प्रकट विप्र कछु न जनायो, मन में बहुत दियो ॥
वोई चोर कुचील वोई, विधि मोकों कहा कियो।
धरिहों कहा जाय तिय आगें भरिरि लेत हियो ॥
भयो सन्तोष भाव मन ही मन आदर बहुत कियो।
'सूरदास' कीन्हे करनी विन को पछिताइ वियो ॥११८॥

सुदामा मंदिर देखि डरयो।
सीस धुनै दोऊ कर मोड़ै, अंतर सोच पर्‌यो ॥
ठाढ़ी तिया मार्ग जीवै जो, ऊँचे चरन धर्‌यो।
तोहि आदरयो त्रिभुवन को नायक, अब क्यों जात फिरयों।
इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आनि छरयो।
'सूरदास' प्रभु करि यह लीला, आपद विप्र हरयो ॥११९॥

देखत भूलि रह्यो द्विज दीन।
ढूंढ़त फिरै न पूछें पावें, आपुन गृह प्राचीन ॥
किधौं देव माया बौरायो, किधौं अनत ही आयो।
तृनहुं की छांह गई निधि माँगत, अनेक जतन करि छायो ॥
चितवत चकित चहूँ दिसि, ब्राह्मन अद्‌भुत रचना रीति।
ऊँचे भवन मनोहर लज्जा, मनि कंचन की भीति ॥
पति पहिचान कढ़ी मंदिर तें, सूर तिया अभिराम।
आवहु कंत देखि हरि कौं हित, पाउँ धारिये धाम ॥१२०॥

भूलो द्विज देखत आपनो घर।
औरहि भाँति रची रचना रुचि, देखत ही उपज्यो हिरदै डर ॥
कै यह ठौर छिनाइ लियो कहुँ, आइ रह्यो कोऊ समरथ नर ॥
कै हौं भूलि अनत खंड आयो, यहु कैलाश जहाँ सुनियत हर ॥

बुधजन कह्‌ दुरबल घातक विधि, सोइ न आजु लह्यो यहपटतर ।।
ज्यों नलिनी बन छाँड़ि बसी जल, दाही हेम जहाँ पानी सर ।।
जगजीवन जगदीस जगतगुरु, अविगत जान भर्‌यो ।
आवो चले मंदिर अपने ही, कमलाकंत धर्‌यो ।।
ता पीछे तिय उतरि कह्यो पति, चलिये घरहि गहे कर से कर ।
'सूरदास' यह सब हित हरि कौ, रोप्यो द्वार सुभगति कलपतर ।।१२१।।

कहौ कैसे मिले स्याम संघाती ।
कैसे गये सु - कंत कौन विधि, परसे बस्तर कुचिल जाती ।
सुनि सुंदरी प्रतिहार जनायो, हरि समीप रुक्मिनी जहाँती ।
उभै मुठी लीनी तंदुल की, संपति संचि करी ही थाती ।
सूर सु दीनबंधु करुनामय, करत बहुत जो श्री न रिसाती ।।१२२।।

ऐसे मोहि और कौन पहिचाने ।
सुनहु सुन्दरी दीनबन्धु बिन कौन मिताई माने ।।
कहँ हम कृपन कुचील कुदरसन, कहँ वै यादवनाथ गुसाईं ।
भेंटे हृदय लगाइ अंक भरि, उठि अग्रज की नाईं ।।
निज आसन बैठारि परम रुचि, निज कर चरन पखारे ।
पूंछी कुसल स्यामघन सुन्दर, सब संकोच निवारे ।।
लीन्हे छोरि चीर तें चाउर, कर गहि मुख में मेले ।
पूरब कथा सुनाइ 'सूर' प्रभु, गुरुगृह बसे अकेले ।।१२३।।

हरि बिन कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि जिय, मिलन न हरि बिसरै ।।
और मित्र ऐसे समया महँ, कत पहिचान करै ।
बिपति परै कुसलात न बूझै, बात नहीं बिसरै ।।
उठिकै मिले तंदुल हरि लीन्हें, मोहन बचन फुरै ।
'सूरदास' स्वामी की महिमा टारी निधि न टरै ।।१२४।।

और को जाने रस की रीति।
कहाँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवनपति, मिले पुरातन प्रीति।
चतुरानन तन निमिष न चितवत, इती राज की नीति।
मोसों बात कही हिरदै की, गए जाहि युग बीति।।
बिनु गोविंद सकल सुख सुन्दरि, भुस पर की सी भीति।
हौं कहा कहौं 'सूर' प्रभु के गुन, निगम करत जाकी कीति।।१२५।।

गोपाल बिना और मोहि ऐसो कौन सँभारै।
हँसत-हँसत हरि दौरि मिले सु उर तें नहिं टारै।।
छीन अंग जीरन वस्त्र दीन मुख निहारै।
मग तन रज पथ लागी पीत पट सों झारै।।
सुखद सेज आसन दीन्हो सु हाथ पाँय पखारै।
हरि हित हर गंग धरैं पदजल सिर ढारै।।
कहि कहि गुरु-गेह-कथा सकल दुख निवारै।
न्याय निज वपु सूरदास, हरि जी ऊपर वै वारैं।।१२६।।

दीन द्विज द्वारे आइ रह्यो ठाढो।
नाम सुदामा कहत नाम जो, दुखी आहि अरि गाढ़ो।।
सुनतहि वचन कमल दल लोचन, कमला तजि उठि धाये।
त्रिभुवन नाथ देखि अपनो प्रिय, हित सों कंठ लगाए।।
आदर कर मन्दिर लै आने, कनक पलंग बैठाए।
कथा अनेक पुरातन कहि-कहि गुरु के धाम बताए।।
खइबे को कुछ भाभी दीन्हों, श्रीपति श्रीमुख बोले।
फेंट उपर तें अंजुल तंदुल, बल करि हरि जू खोले।।
दुइ मूठी तंदुल मुख मेले, बहुरो हाथ पासर्‌यो।
त्रिभुवन दै करि कह्यो रुक्मिनी, अपनी दान निवार्‌यो।।
विदा कियो पहुँचे निज नगरी, हेरत भवन न पायो।
मन्दिर रही नारि पहिचान्यो, प्रेम समेत बुलायो।।

दीनदयाल देवकीनन्दन वेद पुकारत चारो।
'सूर' सू भेंटि सुदामा को हरि, दुख दारिद्र मिटारो ।।१२७।।

हरि कों मिलन सुदामा आयो ।
बिधि करि अरख पाँवड़े दीन्हें, अन्तर प्रेम बढ़ायो ।।
आदर बहुत कियो यादवपति, मर्दन करि अन्हवायो।
चोआ चन्दन अगर कुमकुमा, परिमल अंग चढ़ायो ।।
पूरब जन्म अदात जानिकै, तातै कछू मँगायो ।
मूठिक तंदुल बांधि कृष्ण को, बनिता बिनय पठायो ।।
समदै विप्र सुदामा घर को, सर्वसु दै पहुँचायो ।
'सूरदास' बलि मोहन की, तिहुँलोक पद पायो ।।१२८।।

कुरुक्षेत्र-मिलन

रुक्मिनी मोहिं ब्रज विसरतु नाहीं ।
वा क्रीड़ा खेलन यमुनातट, बिमल कदम की छाँहीं ।।
गोपवधू की भुजा धारि, बिहरत कुंजन माहीं ।
अनेक विनोद कहाँ लौं वरनौं, मो मुख वरनि न जाहीं ।।
सकल सखा अरु नंद जसोदा, वे चित्त तें न टराहीं ।
सुत हित जानि नन्द प्रतिपाले, बिछुरत विपति सहाहीं ।।
यदपि सुखनिधान द्वारावति, तउ मन कहुँ न रहाहीं ।
सूरदास प्रभु कुंज विहारी, सुमिरि सुमिरि पछिताहीं ।।१२९।।

रुक्मिनी चलहु जनमभूमि जाहीं ।
यद्यपि तुम्हरो हतो द्वारका मथुरा के सम नाहीं ।।
यमुना कै तट गाय चरावत, अमृतजल अचवाहीं ।
कुंजकेलि अरु भुजा कंध धरि, सीतल द्रुम की छाहीं ।।

सरस सुगन्ध मंद मलयागिरि, विहरत कुंजन माहीं।
जो क्रीड़ा श्री वृन्दावन में, तिहूँ लोक में नाहीं ।।
सुरभी ग्वाल नंद अरु जसुमत मम चित तें न टराहीं।
'सूरदास' प्रभु चतुर सिरोमनि, सेवा तनिक कराहीं ।।१३०।।

ब्रजवासिन कौ हेतु हृदय में राखि मुरारी।
सब यादव सों कह्यौ बैठिकै सभा मँझारी ।।
बड़ो पर्व रवि गहन कहा कहौ तासु बड़ाई।
चलौ सबै कुरुक्षेत्र तहाँ मिलि न्हैए जाई ।।
तातें मात निज नारि लै हरिजी सब संगा।
चले नगर के लोग साजि रथ तरल तुरंगा ।।
कुरुक्षेत्र में आइ दियो इक दूत पठाई ।।
नंद जसोमति गोपी ग्वाल, सब सूर बुलाई ।।१३१।।

माधवजी आवनहार भए।
अंचल उड़त मन होत गहगहो, फरकत नैन खए ।।
देवी देव सोच जिय अपने, चितवत सगुन दए।
ऋतु वसंत फूली द्रुमवल्ली, उलहे पात नए।
करति प्रतीति आपु आपुन तें, सबन सिंगार ठए।
'सूरदास' प्रभु मिलहु कृपा करि, अवधि पूजि गए ।।१३२।।

हौ इहाँ तेरेहि कारन आयो।
तेरी सौं सुनि जननि जसोदा, हटि गोपाल पठायो ।।
कहा भयो जो लोग कहत हैं, देवकी माता जायो।
खान-पान परिधान सबै सुख, तैंहीं लाड़ लड़ायो ।।
इतो हमारो राज द्वारका, मो जो कछु न भायो।
जब जब सुरति होत उहि हित की, बिछुर बच्छ ज्यों धायो ।।

अब वे हरि कुरुक्षेत्र में आए, सो मैं तुम्हें सुनायो।
सब कुल सहित नंद सूरज प्रभु हित करि वहाँ बुलायो ।।१३३।।

राधा नैन नीर भरि आई।
कबधौं स्याम मिलें सुन्दर सखी, यद्यपि निकट है आई ।।
कहा करौं केहि भाँति जाऊँ अब, पेषहि नहिं तिन पाई।
'सूर' स्याम सुन्दर घन दरसे, तनु की ताप नसाई।।१३४।।

नंद-जसोदा सब व्रजवासी।
अपने अपने सकटि साजि कै, मिलन चले अविनासी ।।
कोउ गांवत कोउ वीन बजावत, कोई उतावल धावत।
हरि दरसन-लालसा-कारनें, विविध मुदित सब आवत ।।
दरसन कियो आइ हरिजू को कहत सपन को साँची।
प्रेम मानि कछु सुधि न रही, अंग रहे स्याम रंग राची ।।
जासो जैसी भाँति चाहिए, ताहि मिलै त्यों धाई।
देस-देस- के नृपति देखि, यह प्रेम रहे अरगाई ।।
उमँग्यो प्रेम-समुद्र दसहुं दिसि, परमिति कही न जाइ।
'सूरदास' इह सुख सो जानै, जाके हृदय समाइ ।।१३५।।

बूझति है रुक्मिनी, पिय इनमें को बृषभान किशोरी।
नेक हमें देखरावहु अपनी, बालापन की जोरी ।।
परम चतुर जिन कीन्हें मोहन, अल्प वैस ही थोरी।
वारे तें जिन्हि यहै पढ़ायो, बुध बल कल विधि चोरी ।।
जाके गुनि गन गुथति माल, कवहूँ तर तें तहि छोरी।
सुमिरन सदा वसत ही रसना, दृष्टि न इत उत मोरी ।।
वह देखो युवतिवृन्द में ठाढ़ी नीलवसन तनु गोरी।
'सूरदास' मेरो मन वाको, चितवन देखि हर्‌योरी ।।१३६।।

हरिजी इते दिन कहाँ लगाए ।
तवहि अवधि मैं कहत न समुझी, गनत अचानक आए ।।
भली करी जु अबहि इन नैनन, सुन्दर चरन दिखाए ।
जानी कृपा राजकाजहुँ हम, निमिष नहीं बिसराए ।।
बिरहिन बिकल बिलोकि 'सूर' प्रभु धाइ हृदय कर लाए ।
कछु मुसकाइ कह्यो सारथि, सुनि रथ के तुरंग छुराये ।।१३७।।

हरिजू वै सुख बहुरि कहाँ ।
यदपि नैन निरखत वह मूरति, फिरि मन जात तहाँ ।।
मुख मुरली सिर मोरपखौवा, गर घुंघुँचिन कौ हार ।
आगे धेनु रेनु तनु मंडित, चितवनि तिरछी चारु ।।
राति दिवस अँग अँग अपने हित, हँसि मिली खेलत खात ।।
'सूर' देखि वा प्रभुता उनकी कहि, नहिं आवै बात ।।१३८।।

रुक्मिनि राधा ऐसे बैठीं ।
जैसें बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप की बेटी ।।
एक सुभाउ एकलै दोऊ, दोऊ हरि को प्यारी ।
एक प्रान मन एक दुहुंन कों, तनु करि देखियत न्यारी ।।
निज मन्दिर लै गई रुक्मिनी, पहुंनाई विधि ठानी ।
'सूरदास' प्रभु तहँ पगु धारे, जहाँ दोउ ठकुरानी ।।१३९।।

राधा माधव भेंट भई ।
राधा माधव माधव राधा, कीट भृङ्ग गति ह्वै जो गई ।।
माधव राधा के रंग राँचै, राधा माधव रंग रई ।
माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना कहि न गई ।।
बिहसि कह्यो हम तुम नहिं अन्तर, यह कहि ब्रज पठई ।
'सूरदास' प्रभु राधा माधव ब्रज बिहार नित नई नई ।।१४०।।

ब्रजबासिन सों कह्यो सबन तें, ब्रज हित मेरे ।
तुमसों में नहि दूर रहत हौं; हौं सबहिन के नेरे ।।
भजै मोंहि जो कोई, भजौ में तिनकों भाई ।
मुकुर माँह ज्यों रूप आपनो, आपुन समदरसाई ।।
यह कहि कै समदेत सकल ब्रज, नयन रहे जल छाई ।
'सूर' स्याम को प्रेम कछू अब, मोपै कह्यो न जाई ।।१४१।।

हमतौं इतने ही सचुपायो ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन बहुरो दरस देखायो ।।
कहा भयो जो लोग कहत हैं, कान्ह द्वारका छायो ।
सुनि यह दसा बिरह लोगन की, उठि आतुर होइ धायो ।।
रजक धेनु गज त्रास मारिबों, कियौ आपनौ भायो ।
महाराज होइ मातु पिता, मिलतऊ न ब्रज बिसरायो ।।
गोपी गोप अरु नन्द चले, मिलि प्रेम समुद्र बहायो ।
येते मानु कृपालु निरन्तर, नैन नीर ढरि आयो ।।
यद्यपि राज बहुत प्रभुता सुनि, हरि हित अधिक जनायो ।
वैसहि 'सूर' बहुरि नंदनंदन, घर घर माखन खायो ।।१४२।।

सबहिन तें सब हैं जन मेरो ।
जन्म जन्म सुन सुवल सुदामा, निवह्यो इह प्रन मेरो ।।
ब्रह्मादिक इन्द्रादि आदि दै, जानत बलि बसि केरो ।
इक उपहास त्रास उठि चलते, तजिकै अपनो खेरो ।।
कहा भयो देस द्वारका, कीन्हों दूरि बसेरो ।
आपु नहीं या ब्रज के कारन, करिहौं फिर फिर फेरो ।।
इहां उहां हम फिरत साध हित, करत असाध अहेरो ।
'सूर' हृदय तें टरत न गोकुल, अङ्क छुवत हौं तेरो ।।१४३।।

भक्त का आवेदन

चरन कमल बन्दौं हरिराई !
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कों सब कुछ दरसाई ।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार बार बन्दौं तिहि पाई ॥१४४॥

दयानिधि तेरी गति लखि न परै ।
धर्म अधर्म अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै ॥
जय अरु विजय कर्म कहा कीन्हो, ब्रह्म सराप दिवायो ।
असुर जोति ता ऊपर दीन्हीं, धर्म उछेद करायो ॥
पिता वचन खंडै सो पापी, सो प्रहलादहिं कीन्हों ।
निकसे खंभ-बीच तें नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हो ॥
दान धर्म बहु कियो भानु सुत, सो तुव विमुख कहायो ।
वेद विरुद्ध सकल पांडव सुत, सो तुम्हरे मन भायो ॥
जग्यहिं करत विरोचन को सुत, वेद बिहित विधि कर्मा ।
सो छलि बाँधि पताल पठायो, कौन कृपानिधि धर्मा ॥
द्विजकुल पतित अजामिल विषयी, गनिका नेह लगायो ।
सुत हित नाम लियो नारायन, सो बैकुण्ठ पठायो ॥
पतिब्रता जालधंर-जुवती, सो पतिव्रत तें टारी ।
दुष्ट पुंश्चली अधम सो गनिका, सुआ पढ़ावत तारी ॥
मुकति हेतु जोगी स्रम साधैं, असुर विरोधहि पावै ।
अविगत गति करुनामय तेरी, 'सूर' कहा कहि गावै ॥१४५॥

आज हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं ।
हौं तौ पतित सात पीढ़िन कौ, पतितै ह्वै निस्तारिहौं ।
अब हौं उघरि नचत चाहत हौं तुम्हे बिरद बिनु करिहौं ॥

कत अपनी परतीत नसावत, मैं पायो हरि हीरा ।
'सूर' पतित तबही उठि है प्रभु, जब हँसि देहौ बीरा ।।१४६।।

छाँड़ि मन हरि विमुखन कौ सङ्ग ।
जिनके सङ्ग कुवुधि उपजति है, परत भजन में भङ्ग ।।
कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजङ्ग ।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग ।।
खर कों कहा अरगजा-लेपन मरकत भूषन अंग ।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खहि छंग ।।
पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतौ करत निषंग ।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़त न दूजौ रंग ।।१४७।।

अव मैं नाच्यो बहुत गोपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल ।।
महामोह के नूपुर बाजत निन्दा सब्द रसाल ।
भरम भरचो मन भयो पखावज, चलत असंगत चाल ।।
तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया कौ कति फेंटा बांध्यो, लोभ-तिलक दियो भाल ।।
क्रोटि कला काछी दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल ।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूरि करौ नंदलाल ।।१४८।।

मेरो मन अनत कहाँ सचुपावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, फिर जहाज पै आवै ।।
कमलनैन को छाँड़ि महाधम, और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै ।।
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील फल भावै ।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।१४९।।

सोइ रसना जो हरि-गुन गावै ।
नैननि की छवि यहै चतुरता, जो मुकुन्द दरसन हित धावै ।।
निर्मल चित्त तौ सोई सांचो, कृष्ण बिना जिय और न भावै ।
स्रवननि की जु इहै अधिकाई, सुनि हरि कथा सुधारस पावै ।।
कर तेई जे स्यामहिं सेवै, चरननि चलि वृन्दावन जावै ।
'सूरदास' जैहै बलि बाकी जो, हरिजू सों प्रीति बढ़ावै ।।१५०।।

जाको मन लाग्यो न नंदलालहिं, ताहि और नहिं भावै हो ।
ज्यो गूंगो गुर खाइ अधिक रस, सुख सवाद न बतावै हो ।
जैसे सरिता मिलै सिंधु को, बहुरि प्रवाह न आवै हो ।
ऐसे 'सूर' कमल लोचन तें, चित नहिं अनत डुलावै हो ।।१५१।।

जनम सिरानो ऐसेहि ऐसे ।
कै घर घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत कै बैसे ।।
कै कहुँ खान-पान रसनादिक, कै कहुँ बान अनैसे ।
कै कहूँ रंक कहुँ ईस्वरता, नट बाजीगर जैसे ।।
चेत्यो नाहिं गयौ टरि औसर, मीन बिना जल जैसे ।
यह गति भई सूर की ऐसी, स्याम मिलैं धौं कैसे ।।१५२।।

अपुनपौ आपुन ही बिसर्यो ।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भ्रमि भ्रमि भूंकि मर्यो ।।
हरि-सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूंघि मर्यो ।
ज्यों सपने में रंक भूप भयो, तसकर अरि पकर्यो ।।
ज्यों केहरी प्रतिबिम्ब देखि कै, आपुन कूप पर्यो ।
जैसे गज लखि फटिक सिला में दरसन जाइ अर्यो ।।
मरकट मूठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर घर द्वार फिर्यो ।
'सूरदास' नलिन कौ सुवटा, कहि कौनें जकर्यो ।।१५३।।

रे मन मूरख जनम गँवायो ।
करि अभिमान विषय-रस राँच्यो, स्याम सरन नहिं आयो ।।
यह संसार सुधा सेमर ज्यों सुन्दर देखि भुलायो ।
चाखन लाग्यो रुई उड़ि गई, हाथ कछू नहिं आयो ।।
कहा होंत अब के मन सोचे, पहिलैं पाप कमायो ।
कहत सूर भगवन्त भजन बिनु, सिर धुनि धुनि पछितायो ।।१५४।।

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।
ता दिन तेरे तन तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं ।।
या देही को गरब न करिये, स्यार काग गिध खैहैं ।
तीननि में तन कृमि बिष्टा के, ह्वै खाक उड़ैहैं ।।
कहं वह नीर कहां वह सोभा, कहं रंग रूप दिखैहैं ।
जिन लोगन सों नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं ।।
घर के कहत सवारे काढ़ौ भूत होइ धरि खैहैं ।
जिन पुत्रहिं बहुत प्रतिपाल्यो, देवी देव मनैहैं ।।
तेई लै खोपरी बांस दै, सीस फोरि बिखरैहैं ।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतन में कछु पैहैं ।।
नर बपु धारि नाहिं वन हरि कौ, जम की मार सो खैहैं ।
'सूरदास' भगवन्त भजन बिनु, वृथा सु जनम गंवैहैं ।।१५५।।

हमें नन्दनन्दन मोल लिये ।
जम के फन्द काटि मुकराये, अभय अजात किये ।।
भाल के तिलक स्रवननि तुलसीदास, मेटे अंक बिये ।
मूंड़ह्या मूंड़ काठ बनमाला, मुद्रा चक्र दिये ।।
सब कोउ कहत गुलाम स्याम को, सुनत सिरात हिये ।
'सूरदास' को और बड़ो सुख, जूठत खाइ जिये ।।१५६।।

हरि बिन कोऊ काम न आयो ।
इहि माया झूठ प्रपंच लगि, रतन सो जनम गँवायो ।।
कंचन कलस विचित्र रोपि कै, रचि पचि भवन बनायो ।
ता में ते तत छन ही काढ़्यो, पल भर रहन न पायो ।।
हौ तेरे ही संग जरौंगी यह कहि, तिया धूति धन खायो ।
चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायो ।।
बोलि बोलि सुत स्वजन मित्रजन, लीन्यो सुजस सुहातो ।
पर्‍यो काज जब अन्त की बेरिया, कोहू न आनि छुड़ायो ।।
आसा करि करि जननी जायो, कोटिक लाड़ लड़ायो ।
तोरि लयो कटिहू कौ डोरा, तापर बदन जरायो ।।
पतित-उधारन गनिका-तारन, सो मैं सठ बिसरायो ।
लियो न नाम कबहूँ धोखे हूँ, 'सूरदास' पछितायो ।।१५७।

जो तू राम नाम चित्त धरतो ।
अब को जन्म अगिलो तेरो, दोऊ जनम सुधरतो ।।
जम की त्रास सबै मिटि जाती, भक्त नाम तेरो परतो ।
तंदुल घिरत संवारि स्याम को, संत परोसे करतो ।।
होतो नफा साधु की संगति, मूल गांठि ते टरतो ।
'सूरदास' बैकुंठ पेठ में, कोउ न फेंट पकरतो ।।१५८।।

सबै दिन गये विषय के हेतु ।
तीनौ पन ऐसे ही खोए, केस भए सिर सेत ।।
आँखिनि अन्ध स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ।
गंगाजल तजि पियत कूप जल, हरि तजि पूजत प्रेत ।।
रामनाम बिन क्यों छूटौगे चन्द्र गहे ज्यों केत ।
'सूरदास' कछु खरच न लागत, रामनाम मुख लेत ।।१५९।।

अब कैं नाथ मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अम्बुनिधि में, कृपासिंधु मुरार ।।
नीर अति गम्भीर माया, लोभ लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कों, गहे ग्राह अनंग ।।
मीन इन्द्री अतिहि काटति, मोट अव सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सियार ।।
काम क्रोध गुमान तृष्ना, पवन अति झकझोर।
नाहि चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर ।।
थक्यो बीचि विहाल बिह्वल, सुने करुनामूल।
स्याम ! भुज गहि काढ़ि लीजै, 'सूर' ब्रज के कूल ।।१६०।।

प्रभु, मेरे गुन अवगुन न विचारौ।
कीजै लाज सरन आये की रविसुत-त्रास निवारौ ।।
जोग जग्य जप तप नहिं कीन्हो, वेद विमल नहिं भाख्यो।
अति रस लब्ध स्वान जूठनि ज्यों, कहूँ नहीं चित राख्यो ।।
जिहि जिहि जानि फिर्यो संकट बस, तिहि तिहि इहै कमायो।
काम क्रोध मन लोभ ग्रसित है, परम विषय विष खायो ।।
जौ गिरिपति मसि घोर उदधि में, लै सुरतरु निज हाथ।
ममकृत दोष लिखै वसुधा भरि, तऊ नहीं निति नाथ ।।
तुमहिं समान और नहिं दूजो, काहि भजौ हौं दीन।
कामी कुटिल कुचालि कुदरसन, अपराधी मतिहीन ।।
तुम तौ अखिल अनन्त दयानिधि, अविनासी सुखराम।
भजन प्रताप नाहिं मैं जान्यो, पर्यो मोह कौ फाँस ।।
तुम सरवग्य सवै विधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह समुद्र 'सूर' बूड़त है, लीजै भुजा पसारि ।।१६१।।

द्वै में एकौ तौ न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाए, वृथा विहाइ गई ।।

ठानी हुती और कुछ मन में औरे आनि ठई ।
अविगत गति कछु समुझि परित नहिं जो कछु करत ठई ।
सुत सनेहि तिय सकल कुटुंब मिलि, निसिदिन होति खई ।
पद-नख-चंद्र चकोर विमुख मन, खात अँगारमई ।।
विषय विकार दवानल उपजी, मोह-बयारि वई ।
भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायो, अजहुँ न टेव गई ।।
कहा होत अब के पछिताएँ, होनी सिर वितई ।
'सूरदास' सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई ।।१६२।।

जग में जीवन ही की नातौ ।
मन बिछुरे तन तन छार होइगो, कोउ न बात पुछातो ।।
मैं मेरो कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातो ।
विषयासक्त रहत निसि-वासर, सुख सियरो दुख तातो ।
साँच झूंठ करि माया जोरी, आपन रूखौ खातौ ।
'सूरदास' कछु थिर नहिं रहई जो आयो सो जातो ।।१६३।।

हरि हरि हरि हरि सुमरन करौ । हरि-चरनार विन्द उर धरौ ।।
हरि कथा होई जब जहाँ । गंगा हूँ चलि आवै तहाँ ।।
जमुना सिंधु सरस्वती आवैं । गोदावरी विलम्ब न लावैं ।।
सर्व-तीर्थ को वासा तहाँ । 'सूर' हरि कथा होवै जहां ।।१६४।।

शब्दार्थ

१ महर = ग्वाल। फूले फिरना = बहुत अधिक प्रसन्न होना। ठहर ठहर = जगह-जगह। फूली गोपी अंग अंग = गोपियों की प्रसन्नता में कोई कसर न रह गई। वन्दीजन = भाट। बन्दनवारे = वंदन मालाएं, आम के पत्ते और फूलों की मालाएं जो उत्सव के अवसर पर दरवाजे पर बाँध दी जाती हैं। जोइसोइ = विविध-जन और वस्तुएं। पिछले पहर = पूर्वजन्म। कारे = काले। जूथ = समूह। जलधर = बादल। मदन = कामदेव। हलधर = बलराम। कंसखेद = कंस का दिया हुआ दुख। मनोज = इच्छा। द्विज = ब्राह्मण।

विशेष—श्रीकृष्ण जी का जन्म होने पर चारों ओर आनंद और उत्साह छा गया। नंदमहर, गोपगोपी, साधुसंत, वेद, सभी का उद्धार करने के लिये स्वयं भगवान के पदार्पण से इनमें कोई भय न रह गया।

२ मेलत = डालते हैं। पालने = हिंडोले में। वट = यहाँ उस वट-वृक्ष से आशय है, जिसका आश्रय लेकर प्रलय के समय भगवान विश्राम लेते हैं। झेलत = हाथ पैर हिलाते हैं। दिगदंती = दिशाओं के हाथी। सकट = गाड़ी, यहाँ शकटासुर से तात्पर्य है। पौढ़े = लेटे। अपने रंग = मनमाना।

बिडरि = छिटकना, तितर बितर होना। भव = महादेव।

वि०—कवि ने ये पद बाल गोपाल की विराट-शक्ति का परिचय कराने के लिये लिखे हैं। महात्मा सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे और श्रीकृष्ण के बाल-स्वरूप तथा गोपीवल्लभ-रूप की उपासना करते थे।

३ लालन = प्यार संबोधन, छोटे लड़के के लिये कहा जाता है।

वारी = बलिहारी। डीठि न लागे = नजर न लग जाय। मसिबिन्दा = नजर पर। नन्हीं = छोटी। भू = भौंह। दू = दो।

४ कुटिल = टेढ़ी। भृकुटि = भौंह। विकट = टेढ़ी। द्वै द्वै = दो दो। सीपिज = मोती। लिलार = ललाट माथा। मधि = बीच। सुरुगुरु = वृहस्पति। लोल = चंचल। रद-छद = ओष्ट, ऊपर का अधर। पंकज = कमल। लट = केश। लौनी = सुन्दर। नूतन = नया। राजति = शोभा देता है। उदोत = प्रकाश। लोचन = आँख। कपोल = गाल। ललित = सुन्दर। नासिका = नाक।

वि०—ज्योतिष शास्त्र के अनुसार वृहस्पति का रंग पीला और शुक्र का सफेद है।

५-१० कनक = सुवर्ण। कुलहि = टोपी। सुभग = अच्छी। सुरग = रंगीन। मघवा = इन्द्र। सुदेस = सुन्दर। चिकुर = बाल। बगराई = मोहन के मुख के चारों ओर फैला हुआ। मंजुल = सुन्दर। स्वेत = सफेद, उज्वल। लुनाई = सुन्दरता। सनि = शनि, जिसका रंग काला होता है। गुरु असु = शुक्र जिसका रंग सफेद है। देवगुरु = वृहस्पति, जिसका रंगपीला होता है। भौम = मंगल, जिसका रंग लाल है। विज्जु = बिजली। खंडित वचन = तोतली बातें। जल्प = कथन, व्यर्थ की बात। घुटुरुन = घुटने के बल। नैन = आँख। निरखि = देखकर। घन = बादल। अलि-औली = भौंरों की पांति। पीत = पीला। द्युति = चमक। रेनु = धूल। मंडित = शोभित।

वि०—सूरदास की यह एक प्रवृत्ति है कि उपमाओं में प्रायः ग्रहों के रूप-रंग सम्बन्धी अपने ज्ञान का भी परिचय देते हैं।

हलरावै = हिलाना डुलाना! दुलराइ = दुलार करके, प्यार करके! जोइ-सोइ—जो मन में आया वही। निदरिया = नींद। वेगि = जल्दी। कान्हा = कृष्ण। सैन = इशारा। अमर = देवता। भामिनी = स्त्री। यहि अंतर = इस बीच। कर = हाथ। मधुरै गावैं = मीठे सुरों में गाती है।

वि०—संख्या ६ के पदों में सूरदास ने श्रीकृष्ण के अवतारी पुरुष होने का संकेत किया है, जैसे कि संख्या १ और २ के पदों में कर चुके हैं।

अभिलाषा = इच्छा। घुटुरुअन रेंगत = घुटुनों के बल चलते हैं। जसुमति = यशोदा। द्वैक = दो एक। तुतरे = तोतरे। झरे = निकलें। ररै = रटे, पुकारे। अँचरा = अँचल। अँधबारि = आँधी। घहरे = गरजता है। गहि = पकड़ कर। पेखस = देखना। गगन = आकाश। सत = मौजूद। गहें = पकड़े हुये। अरबराह = रास्ते में ठीक जगह पर पाव न पड़ने के कारण लड़खड़ा कर। कर टेकि = हाथ का सहारा देकर। बकि = बोल कर। दुहुँधा = दोनो ओर। पगद्वै करि = दो चार कदम भर। धौरी = सफेद रंग की गाय, कपिला। पय = दूध। झिगुली = छोटे बच्चों के पहनने का ढीला कुरता। कान लाय = कान के पास मुंह लगा कर धीरे से। दाऊ = बलराम जी। ब्यौंहों = ब्याह दूंगी। सौंह = सौगंध। पान न करिहौं = न पीऊँगा। ताऊ = चाचा। जलपुट भीतर को = जल के भीतर का। ओकि गहौंगी = अँजली में लूंगा। झलमलात = चमचमाता है। पर निपट = विलकुल। वरज्यो = रोकने पर। हौं = मैं। बौराये न बहौंगौ = भुलाया देने से न मानूंगा।

१–२० बंशीवट = एक स्थान जहाँ पर वट वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण वंशी वजाते थे। साँझ परे = संध्या होने पर। वहियन की = बाहों का, हाथवाला। छीका = सीका, सिकहर। भोरी = भोली, सीधीसादी। भेद = कपट। कमरिया = छोटा कम्बल।

भृङ्ग = भौंरा। तमचुर = मुरगा, कुक्कुट। रोर = शब्द। खिरकन = (खरकन में) गाय भैंस बाँधने के स्थान में। वछरा = वछड़ा। राँभति = बोलती हैं। विधु = चन्द्रमा। अंवुज = कमल। आतुर = अधीर। निसा = रात। तिमिर = अँधेरा। सुछंद = स्वच्छन्द, बेरोकटोक। मकरन्द = पराग, रस। वल = वलराम जी। काढ़त = निकालती हैं, संवारती हैं। नहावय = नहलाती हैं। पोंछत = पोंछता है। भ्वैं = जमीन पर। काचो = कच्चा। पचि पचि = हैरान होकर, जी तोड़ परिश्रम करके। हलधर =

बलराम जी। खिजाये = तंग किया, चिढ़ाया। रिस = गुस्सा। हौं = मैं। तातु = पिता। कत = क्यों, कैसे। रीझे = प्रसन्न हो रही है। वलभद्र = बलराम। चवाई = चुगोलखोर, व्यर्थ इधर की उधर लगाने वाला। धूत = धूर्त। गोधन = गाय। सौं = सौगंध। सिगरे = सब। घिरावत = चारों ओर चक्कर लगवाते हैं, पशुओं को इकट्ठा कराते हैं। न पत्याहि = न विश्वास करे। बहराइ = वहलाकर। अति = अधिक। रिंगाइ = पैदल-चलाकर। भँवरा = लट्टू। चक = चकरी। आरे पर = आले पर, ताक पर। बोलि लिये = बुला लिये। पौर = ड्योढ़ी। जोरि = जोड़ी। मोर = मोड़कर। तृन डारति तोरी = दाँत से दबाकर तिनका तोड़-तोड़कर फेंकती हैं, ताकि कहीं नजर न लग जाय।

कनियाँ = गोद, उछंग। तिछनिया = बिलकुल शुद्ध, खालिस, निष्कपट। मो कारन = मेरे लिये। वलि = बलैया लेती हूँ। जोटी = जोड़ी। वारे = छोटे बालक। अपनी भाँति = अपनी छोटे होने की अवस्था। तनिक-तनिक = छोटे-छोटे, नन्हें नन्हें। चारन = चराने की। रेंगते = चलते चलते। माँझ = में। टेक = हठ। ढुठौना = लड़का। अविगत = अज्ञात, अनिर्वच-नीय। अविनाशी = नित्य, अक्षर। ऐसेऊ गुन = ऐसी भी बातें। निदर्‌यो = तिरस्कृत किया।

२१-३०, कुटिल = टेढ़ी। कच बिथुरी = विखरे बाल। लिलाटतर = माथे के नीचे। अवलोकनि = चितवन। सुललित = सुन्दर। अरुन = लाल। अधरन = होठ। विद्रुम = मूँगा। बिब = बिंवा का फल। दशन = दाँत। तड़ित = विजली। परसपर = आपस में। इन्द्रचाप = इन्द्रधनुष। दामिनी = विजली। बिलोकि = देखकर, अवलोकन कर। बिरमावत = रोकता है। मुखारविंद = मुखकमल। गुंज फल = घुंघुची। उडुपति = चन्द्रमा। विशाल = वड़ा। उपरैना = दुपट्टा। चोलना = वस्त्र। लोचन = आंख। तृगित = संतोष। सुभग वपु = सुन्दर शरीर। वगमाल = बगलों की कतार। प्रबाल = मूंगा। गोरज मंडित = केश जो गायों के पैर से उठी हुई धूल से शोभित हो। लोल = चंचल। गोधन = गायें। जितकित = जिधर

तिवर । हलधर = बलराम । सिंगी = एक वाजा । कुञ्चित = टेढ़ा । मयूर = मोर । मदन = कामदेव । शर = बाण । अधरबिंब = बिंबाफल सा लाल अधर । पयोधि = समुद्र । कुण्डल मकर = मगर की आकृति का कुण्डल । श्रमसीकर = पसीना । मीन = मछली । तड़ाग = तालाब । नासा = नाक । प्रसून = फूल । चिबुक = ठोड़ी । दाड़िम = अनार । बिलोकति = देखती हैं। भेषे = वस्त्र आदि पहने हुये । कच = बाल । भाल = माथा। भ्रुव = भौंहें । द्युति = चमक । चोरत हैं = हरते हैं । रोमावली = रोएँ। सुनियत = सुना जाता है । मेखला = करधनी । ऐसी विधि = इस तरह । सुभाई = सुन्दर । प्रवीनता = चतुरता, निपुणता । अयाने = अनजाने । त्रिभुवनपति = तीनों लोक के स्वामी । तरुन = युवक । आछे = सुन्दर । विवेक = भलाई को बुराई से अलग कर के समझाने और उस पर दृढ़ बनाने वाली बुद्धि । मदन = कामदेव । शर = बाण । तरिन = सूर्य। मुकुर = दर्पण । वित्त = धन । श्रवण = कान । दाड़िम = अनार ।

३१-४० आ = हिहै । थापों = स्थापित की, नियन्त्रित की । थिर चर = जड़ चैन्तन्य । आठ वदन = आठ छेदवाली । गरबीली = घमण्डी । विपुल = बहुत । विभूति = ऐश्वर्य । थान = स्थान । श्रीपति = विष्णु । मराल = हंस । आरोहन = चढ़ना । प्रशंसा = प्रशंसनीय । सुवन = पुत्र ।

वि—सं ३१ के पदों में वांसुरी और ब्रह्मा का रूपक स्थापति करके वाँसुरी का पद बढ़ा दिया गया है । इससे यहाँ अधिक अभेद रूपाकालंकार है ।

नटवर = श्रीकृष्ण । अलक = टेढ़े बाल । विकट = टेढ़ा । उपमा = सादृश्य की स्थापना । अनूप = जिसकी उपमा न मिले । सुरभी वृन्द = गाएँ । कनक-मेखला = सोने की करधनी । नृत्यत = नाचता है । मन्द मन्द = मधुर मधुर, थोड़ा थोड़ा । निगम = वेद । माहि = में । दरस = दर्शन । दंपति = पति-पत्नी । जह = यह । अदभुत = अनोखी । कौशल = रचना-चातुर्य । सौदामिनी = बिजली । होड़ = लाग-डाट । बग = वगुला । सुदेस = सुन्दर । जलधर = मेघ । वनमाल = रंग विरंगे फूलों

की लम्बी माला। दूरि करी = परास्त कर दी। नीर हरयो = तेज हर लिया। फेफरी अधरन = चिन्ता आदि के कारण होठों पर जो पपड़ी पड़ जाती है। इन्दु = चन्द्रमा। सुभग = सुन्दर। चारु = सुन्दर। मुकता-दाम = मोती की माला। कैधों = इसका प्रयोग सन्देह व्यक्त करने में होता है। धौं = धौं किधौं। नन्दसुवन = श्रीकृष्ण। उपाम = 'उपमा' का एक तोड़ा मरोड़ा हुआ रूप। प्राची = पूर्व। राका = चाँदनी रात। अधर = होठ। कूजत = कलरव करता है। मदन गोपाल = श्रीकृष्ण।

दाली = दलन किया, नष्ट किया। अघ = अघासुर नामक राक्षस। वच्छ = बत्सासुर नामक एक राक्षस। अरिष्ट = एक दैत्य। केशी = एक दैत्य। प्रलंब = एक दैत्य। तृणावत = एक दैत्य। आली = सखी। पतिपाली = निबाहा। मधु = एक दैत्य। बारे = छोटे। भारे = भारी।

४१-५०, बल = बलराम। सूर = सूरज। कौतूहल = विनोद। गेह = घर। श्रवण = कान। लोल = चंचल। कुसुम = फूल। रंगरन = रंगस्थली में होने वाली लड़ाई। वारि = वारते हैं। गर्गवचन = गर्ग एक मुनि थे। उन्होंने नन्द को बतलाया था कि श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार हैं और संसार का भार उतारने के लिये मानव-शरीर धारण करके आये हैं। प्रतिपालन = निर्वाह। मधुपुरी = मथुरा। अविनाशी = जिसका नाश न हो। परानी = भाग गई। प्रतिपाल = निर्वाह। आपदा = विपत्ति। गिरि = पहाड़ वासर = दिन। ऊरध = ऊपर। वेदना = पीड़ा।

५१-७० संताप = पीड़ा। खरी = खड़ी। नीच दसा लै ऊँच धरी = नीच अवस्था से उठाकर ऊँची अवस्था में पहुँचाया। जेते मान = जितनी मात्रा में। दिवस = दिन। खीनप = तला, दुबला। बयारि = हवा। परपंरा = परिपाटी। मया = दया। कण्ठ भरि आय = गला भर आया, रूँध गया। समुदाय = समूह। बोधि = समझाकर। मतिमन्द = मूर्ख। छूटे बंद = बंधन से छूटे। सुफलकसुत = अक्रूर। गोकुलचन्द = श्रीकृष्ण। रौरि = हाहाकार शब्द। दह = दस। चारौ = दो चर्मचक्षु और दो ज्ञानचक्षु। तनु जोर जात = तन जलना मुहावरा है, भाव यह है कि वेदना

आग की तरह शरीर को जला रही है ! छतियाँ फटि न गयी द्वै टूक = छाती फट कर दोखंड न हो गई। यह भी मुहावरा है। गलितगात = शरीर गल गया। कत = कैसे। अह्यो = सांप। चाखन = चखने। निवह्यो हुतौ = निवाह हुआ होता। अर्थात् दशरथ की तरह पुत्र वियोग में प्राण त्याग भी कर दिया होता तो जन्म वन जाता। पोचकारी = निन्दनीय काम किया। घालि पाग = पगड़ी वसुदेव के पैर पर रखकर। गरे फंद = गले में फंदा डाल कर। मुनिबंद = मनुनियों के पूज्य। सरवर = तालाव। मतिमन्द = मूर्ख। घोष = गोकुल। हेम = सोना। मागध = चारण। वसुद्यौ = वसुदेव। तात = पिता। भ्राजत = शोभा देता है। शारंग पानी = कमल ऐसे हाथों वाले भगवान् रामचन्द्र। ठगोरी = मोहनी। लड़ैते = दुलारे। नवनीत = माखन। विदरत नहिं = फटता नहीं।

७१-८० एते दिवसन = इतने दिन। ज़िनि न्हातहु यार खसै = शरीर को तनिक भी क्लेश न हो; किसी तरह बाल न बाँका हो। पन्थी = राही। कृशगात = दुर्बल। दावानल = जंगल की आग। सत्वर = शीघ्र। पुरातन = प्राचीन, पुराना। देवकी = वसुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता। मया = कृपा, प्रेम। टेव = आदत, स्वभाव। उबटनों = शरीर पर मलने का सरसों, तिल और चिरौंजी आदि का लेप। तातो = गरम। लड़ैतो = दुलार, प्यारा। हौं = मैं। जुहार = प्रणाम, पैर छूना। बारक = एक बार। धाई = धाय। पाहुन = मेहमान। वृषभानुमहरि = राधा की माता। समाधान = आश्वासन। सघन कुंज = घनी कुंज। निरन्तर = लगातार। अपने मन की वीती = अपने ऊपर की बीती हुई बात। वाको विलग मानो जिनि मोहन = मोहन, उसका बुरा न मानों, अपने मन में कोई दूसरी बात न समझो।

अंकम = गोद। अनत कहूँ के उत्तर = और कहीं जाने के प्रसंग से। पहुनई सूतर = पहुनई के सूत्र से, मेहमान के ढंग पर। कालिंदी = यमुना। रति = प्रेम। झर लायो = लगा दी।

८१-९० निशान = युद्ध का डंका। सुरपति = इन्द्र। सुरति = सुधि।

वासररैनि = दिन रात । अनियारा = तीखा । पंखि = पक्षी, चिड़ियां । बिथहि = पीड़ा को । शरद समैहू = शरद ऋतु में भी । सजनी = सखी । बिरमाए = रोक लिया । अमल = साफ । सरिता = नदी । मयंक = चन्द्रमा । दाहक = जलाने वाला । गरल = विष । कोई = का । बर-जोरी = हे सखी, मना करो । बलाहक = बादल । उदधि = समुद्र । मधु-कर = भौंरा, ऊधो । सरोरुह = कमल । चिरातन = चिरन्तन, अवि-नाशी । कमलनयन = श्री कृष्ण ।

वि०—८१ सं० के पद में कामदेव और सेनापति का तथा ८६ सं० के पद में योगी और वियोगिनी का सम-अभेद रुपक बाँधा गया है।

९१-१०० सति भाउ = सचाई का भाव । बारक = एक बार । आतुर = व्यग्र, दुखी । सिराति न = ठंडी नहीं होती । बाइ = बाई, वायु-रोग । सलाका = सलाई । जोग जोग = योग के योग्य । सार = तत्व । भसम = राख । अनल = आग । दाही = जल रही हैं । अपु = आपा, अंतःकरण । कृशगात = दुर्बल । गोदोहन = गो के दुहने की क्रिया । त्रासी = त्रस्त, दुखी ।

१०१-११० बिदरति नाही = नहीं फटती है । छीन = दुर्बल । दाहु = जलन । सुरभि = गाय । मग जोवति = राह देखती है । विद-मान = मौजूद । नेम = नियम । बनचारी = बन में घूमने वाली । सजीवन मूरि = श्रीकृष्ण । बापुरी = गरीबिन । सकारे = सबेरे । पनारे = बड़े बड़े नाले । दिवस बिहात = दिन बीतता है ।

१११-१२० निरभान = सूर्य से रहित । भयान = भयावना, डरावना । यदुपति = श्रीकृष्ण । अंतरजामी = जिसकी पैठ भीतर तक हो । द्रवत = दया से आर्द्र होते हैं । रीझत हैं तुलसी के पात = थोड़े में सन्तुष्ट हो जाते हैं । प्रयंक = पलंग । तंदुल = चावल । अंकमाल दै = अंकवार दे-कर, बार, बार गले लगाकर । करमीड़े = हाथ मलता है । तृणहु की छांह गई = कुछ न रह गया । छिनाइ लियो = ले लिया । नलिनी = कमलिनी ।

१२१-१३० सँघाती = साथी । प्रतीहार = द्वारपाल । श्री = रुक्मिणी । मुख में मेले = मुख में डाला । चतुरानन = ब्रह्मा । निमिष = पल । भुस पर की सी भीति = जैसे भूसे पर खड़ी की गयी भीत दुर्बल होती है । कीर्ति = यशोगान । अदात = कंजूस । अचवाहीं = पीते हैं । रवि गहन = सूर्यग्रहण । नैन खये = जो नेत्र रास्ता देखते देखते थक गए हैं । द्रुम = पेड़ । बल्ल = लता । प्रतीति = विश्वास ।

१३१-१४० परिधान = वस्त्र । सकट = बैलगाड़ी । अविनासी = नित्य, परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण जी । बेनु = बाँसुरी । उतावल = जल्दी । लालसा = उत्कंठा । मुदित = प्रसन्न । रंगराची = प्रेम में मगन। रहे अरगाइ = चुप हो गए, कुछ कहते न बना । परमिति = परिमाण, सीमा । युवतिवृन्द = युवती स्त्रियों का समूह । मुकुर = दर्पण ।

१४१-१५० राइ = राय, राजा । मूक = गूंगा । रंक = गरीब । छत्र = राजछत्र । पाई = चरण । अकरन करन करै = असम्भव कर दिखाता है । सराप = शाप । उच्छेद = विनाश, ध्वंस । नरहरि = नृसिंह भगवान । भानुसुत = सूर्य के वीर्य से और कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न कर्ण । विरोचक को सुत = विरोचन का पुत्र, वलि । पुंश्चली = व्यभिचारिणी, कुलटा । मुकुति = मुक्ति, मोक्ष । पतित = नीच । उघरि = खुलकर । बिरद = बाना । बीरी = पान का बीड़ा । हरि-विमुख = नास्तिक । अरगजा = चदन, कपूर खस आदि सुगंधित चीजों का लेप । मर्कट = बन्दर । खहि = धूल । छंग = (उछंग) गोद, अंग । पाहन = पत्थर निषंग = तरकस । चोला = कुरते की तरह का एक वहुत लम्बा पहनावा । महामोह = घोर अविद्या व अज्ञान । पखावज = मृदंग । तृस्ना = लालच । नाद = शब्द । घट = शरीर । काछि = पहन कर । अनत = दूसरी जगह । कमलनैन = कमल जैसे नयन वाले विष्णु भगवान । महातम = वड़प्पन । करील = एक कटीली झाड़ी, जिसमें पत्तियाँ नहीं होतीं, इसके फलों को टेंकी कहते हैं । छेरी = बकरी । सोइ रसना = उसी जीभ का

होना सार्थक है। मकरंद = पराग। मुकुन्द = कृष्ण। तेई = वेही। सरिता = नदी। सिंधु = समुद्र। कमल लोचन = कमल जैसे नेत्र वाले श्रीकृष्ण।

१५१-१६० ऐसे हि ऐसे = व्यर्थ के काम करते करते। बैसे = बैठे हुए। अनैसै = बुरा, खराब। ईश्वरता = ऐश्वर्य, वैभव। बाजीगर = जादूगर, इन्द्र-जाली। अपुनपौ = आत्मभाव, आत्म स्वरूप। कांच मन्दिर = शीशा जड़ा हुआ मकान। भूकि = भूक भूक कर। हरि सौरभ = कस्तूरी। तसकरि = चोर। केहरि = सिंह। प्रतिबिंब = परछाईं। फटिक = स्फटिक पत्थर। अरचौ = अड़ गया। नलिनी = कमलिनी। सुवटा = मृणाल तन्तु। विषयरस = सांसारिक भोग विलास का स्वाद। अरचो = रंगा रहा, पगा रहा। सेमर = शाल्मलि। कमायो = सत्कर्मो का संचय किया। तन तरुवर = शरीर रूपी सुन्दर पेड़। पात = पत्ते। बेगि = शीघ्र। घनेरी = अधिक। कबीला = स्त्री, परिवार। सूरज = सूरदास। मुकराये = छुड़ाए। अभै = निडर। अजात = जन्म-रहित, मुक्त। स्रवन = कान। बिए = उत्पन्न किए, लगा दिए। मुद्रा = विष्णु का आयुध, जिसकी छाप वैष्णव लोग अपनी भुजाओं पर लगाते हैं। सिरात = ठंडा होता है। प्रपंच = संसार का जंजाल। होपकरि = स्थापित कर। पचि = जी तोड़ मेहनत करके। त्रिया = स्त्री। धूति = मूर्त। मोरिमुख = मुखमोड़ कर, हाव भाव दिखा कर, कटाक्ष मार कर। अन्त की बिरियाँ = मृत्यु समय। बँधायो = अर्थी पर बांध कर रक्खा। लाड़ लड़ायो = प्यार दुलार किया। पतित उधारन = श्रीकृष्ण। गनिका = वेश्या, पिंगला नाम की वेश्या से अभिप्राय है। तंदुल = चावल। घिरत (घृत) = घी। परोसी = थाली या पत्तल पर रक्खा हुआ भोजन। मूल गाँठ ते टरता = ऋण चुकता हो जाता। पैंठ = हाट बाजार। फेंट = कमर में बँधा हुआ कपड़ा। फेंट पकड़ने का अर्थ इस प्रकार पकड़ना है कि जिससे कोई भाग न पाए। तीनौपन = बचपन, जवानी और बुढ़ापा। ऐसे ही = व्यर्थ ही। गंगाजल = भगवद्भक्ति से अभिप्राय है। प्रेत = भूत। केत = केतु, नवग्रहों में से एक।

उधारि = उद्धार करो, पार लगाओ। भव अम्बुनिधि = भवसागर। गम्भीर = गहरा। अगाध = गहरा। अनंग = कामदेव। मीन = मछली। नाम = भगवान की वंदना आदि। वीचि = लहर।

वि०—इस पद में सम-अभेद रूपकालंकार है। सांसारिक जीवन और उसके प्रलोभनों का रूपक समुद्र तथा उसके भयंकर संकटों के साथ बाँधा गया है।

१६१-१६४—कुचील = खराब कपड़े पहनने वाला। सुखरास = सुख की राशि, सुख के समूह।

अविगत = भगवान। टेव = आदत। छार = मिट्टी। मैं मेरो = अहंकार। पेच सुहातो = सब लोगों को पसंद आने वाला नाम। विषयासक्त = विषय, वासना में पड़ा हुआ। सीरो = शीतल।

वि०—'जो गिरिपति मसि' आदि पंक्तियों में अतिशयोक्ति और 'पदनखचन्द' आदि पंक्तियों में सम अभेद रूपक है।